वनौषधि-शतक

[जड़ी-बूटी]

(नित्योपयोगी सौ वनस्पतियों का परिचय)

•

लेखक

रामनाथ वैद्य

द्रव्य-गुण-संग्रहालयाध्यक्ष

गुरुकुल-कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

•

सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन

राजघाट, वाराणसी

प्रकाशक
सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन,
राजघाट,
वाराणसी-२२१००१

संस्करण : आठवाँ
प्रतियाँ : ३,०००
कुल प्रतियाँ : २०,०००
जून, १९८७

मूल्य : आठ रुपये

मुद्रक
शिव प्रेस
ए. १०/२५ प्रहलाद घाट, वाराणसी

दो शब्द

श्री रामनाथ वैद्य द्वारा लिखित 'वनौषधि-शतक' पुस्तक हमारे आग्रह पर ही तैयार की गयी है। हमारी यह धारणा है कि भारत में वनौषधियों का बहुत व्यापक ढंग से उपयोग होना चाहिए। प्राचीन काल से ये जड़ी-बूटियाँ हमारी सामान्य जनता इस्तेमाल करती रही है। ये बनस्पतियाँ सस्ती होती हैं, आसानी से मिल जाती हैं और बहुत लाभकारी भी सिद्ध होती हैं। वर्तमान एलोपैथी की दवाइयों का सेवन महँगा भी है और अक्सर हानिप्रद भी।

इस दृष्टि से श्री रामनाथ वैद्य की यह पुस्तक बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। वैद्य व प्राकृतिक चिकित्सक भी इससे लाभ उठा सकेंगे। हिन्दी-जगत् इस पुस्तक का समुचित स्वागत करेगा, ऐसी आशा है।

-श्रीमन्नारायण

प्रकाशकीय

विज्ञान की नयी खोजों के आधार पर सभी चिकित्सा-विधियों ने वनौषधियों के महत्त्व को समझा है। इन खोजों पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

'यस्य देशस्य यो जन्तुस्तज्जं तस्यौषधं मतम्'—अर्थात् आयुर्वेदशास्त्र की मान्यता के अनुसार प्रत्येक प्राणी के लिए उसीके देश में उत्पन्न ओषधि 'औषध' यानी रोग-निवारण में समर्थ होती है। साथ ही वह यह भी मानता है कि वही चिकित्सा-क्रिया सफल और सही होती है, जो प्रस्तुत रोग का शमन कर उस औषध के प्रतिक्रिया-स्वरूप दूसरी व्याधि उत्पन्न न होने दे। इन दोनों दृष्टियों से वनौषधियाँ कसौटी पर खरी उतरती हैं।

भारतवर्ष इन वनौषधियों का अपूर्व भण्डार है। इस कारण भी हमारी इस भूमि को 'वसुन्धरा' कहा जाता है। शास्त्रों में अनेक ओषधियाँ दिव्यज्योति एवं दिव्य प्रभाव से सम्पन्न बतायी गयी हैं। काल के प्रभाव से आज वे अधिकांश ओषधियाँ लुप्त हो गयी हैं।

श्री रामनाथजी वैद्य ने वनौषधियों की जानकारी को नये परिवेश में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इसका सम्पादन-संशोधन-कार्य श्री गोविन्द नरहरि वैजापुरकर शास्त्री ने सम्पन्न किया है। वे परम्परागत वैद्य भी हैं।

इस पुस्तक के अध्ययन से देश का अपार धन दवा-दारू के नाम पर बरबाद होने से बचेगा—कौड़ियों के मोल उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त होगा।

प्रस्तुत ग्रन्थ का यह आठवाँ संस्करण है। पाठकों ने इस कृति को पसंद किया और इससे लाभ उठाया, यह हमारे लिए प्रसन्नता की बात है।

निवेदन एवं समर्पण

सन् १९६३ में गुरुकुल-कांगड़ी विश्वविद्यालय में माननीय श्रीमन्नारायणजी (महामहिम राज्यपाल, गुजरात) अपनी धर्मपत्नी श्रीमती मदालसाजी के साथ पधारे थे। उन्होंने गुरुकुल के अन्य विभागों के साथ आयुर्वेद-महाविद्यालय का 'द्रव्यगुण-संग्रहालय' भी देखा, जहाँ वनस्पतियाँ, फल, पत्र, रंगीन चित्र आदि और हरित वनस्पतियाँ भी संगृहीत हैं। मुझे इस विभाग का अध्यक्ष होने का सौभाग्य प्राप्त था।

श्री मदालसाजी ने यह विभाग तथा मेरी लिखी 'गांव के पौधे' नामक पुस्तक, जो उत्तर प्रदेश विकास-विभाग द्वारा स्वीकृत है, देख अचानक कहा कि 'हमारी यह यात्रा सफल रही।' श्रीमती मदालसा नारायण ने यह इच्छा प्रकट की कि मैं सौ वनस्पतियों पर एक छोटी-सी पुस्तक लिखूँ। उनकी प्रेरणा से यह पुस्तक लिखकर ३५ वर्षों से शास्त्र-मनन तथा गुरु-परम्परा से प्राप्त ज्ञान जनता-जनार्दन को भेंट करने का सुअवसर मिला। उन्हीं मूल प्रेरणास्रोत श्रीमती मदालसाजी को यह पुस्तक 'त्वदीयं वस्तु तुभ्यमेव' कहकर समर्पित करता हूँ।

ग्रन्थ में वर्णित सौ वनस्पतियों का वैज्ञानिक ढंग से नवीन वर्गीकरण किया गया है, जो इस प्रकार है :

१. नाड़ी-संस्थान प्रभावक वर्ग
२. श्वसन-संस्थान प्रभावक वर्ग
३. रक्तवह-संस्थान प्रभावक वर्ग
४. पाचन-संस्थान प्रभावक वर्ग
५. मूत्रवह-संस्थान प्रभावक वर्ग
६. प्रजनन-संस्थान प्रभावक वर्ग
७. सार्वदैहिक प्रभावक वर्ग

इस प्रकार के वर्गीकरण का अभिप्राय यह है कि जो वनौषधि जिस संस्थान में परिगणित है, उस संस्थानगत रोगों पर विशेष रूप से तथा अन्य संस्थानगत रोगों पर साधारण रूप से कार्य करती है। तत्तत् वनस्पति के परिचय के प्रसंग में वहीं यह भी निर्दिष्ट कर दिया गया है कि किस-किस संस्थान पर वह कैसा प्रभाव करती है।

वनौषधि के इस वर्णन में मुख्यतः चार बातों पर प्रकाश डाला गया है : (१) परिचय, (२) गुण, (३) रासायनिक संघटन और (४) रोगों पर प्रयोग या उपयोग।

परिचय के अन्तर्गत (१) नाम-पर्याय : विभिन्न प्रदेशों में जानकारी हेतु, (२) स्वरूप : संक्षिप्त एवं सुबोध, (३) उत्पत्ति-स्थान और (४) जाति तथा अन्य विशेष जानकारी है। गुण के अन्तर्गत वनस्पति का रस, गुण, वीर्य, विपाक आदि तथा वनस्पति का शरीर पर मुख्य प्रभाव वर्णित है। रासायनिक संघटन के अन्तर्गत संक्षिप्त रूप में उस वनस्पति में स्थित तत्वों की नवीन खोजों का परिचय दिया गया है। प्रयोग या उपयोग के अन्तर्गत किस रोग पर कौन-सी वनस्पति किस मात्रा में किस प्रकार दी जाय, यह बताया गया है। ग्रन्थ में आयी वनस्पतियों की अकारादि नाम-सूची तथा रोगानुसार वनस्पति-सूची भी जोड़ दी गयी है।

वनौषधि-शतक के वर्गीकरण एवं गुणादि विषयों के लेखन में चि० वैद्य ज्ञानेन्द्र पाण्डेय (भू० पू० मेडिकल अफसर, श्रम विभाग, उ० प्र० सरकार) ने बहुत ही सहयोग प्रदान किया है और चि० राजेन्द्र पाण्डेय का भी सुलेखन एवं रोग-सूची बनाने में उल्लेखनीय योगदान रहा है। अतः मैं शुभकामनाओं के साथ उन्हें शुभाशीर्वाद देता हुआ पाठकों से अनुरोध करता हूँ कि उदारता के साथ इसे अपनाने की कृपा करें।

–लेखक

अनुक्रम

रोगानुसार वनस्पति-सूची

अजीर्ण : जायफल, हरीतकी, आँवला ।

अग्निदग्ध : घीकुमार ।

अतिसार : अफीम, भाँग एरण्ड, बिल्व, सोनपाठा, गम्भारी, कांचनार, धनिया, नागरमोथा, बहेड़ा, नीबू, चित्रक, सौंफ, कुटज, बबूल, सेमल, पलाश, लोध, पाठा, सफेद चन्दन, जामुन ।

अतिस्वेद : कुलथी, हरड़ ।

अनिद्रा : सर्पगन्धा धनिया, अश्वगन्धा

अन्नद्रवशूल : कुलथी ।

अन्तर्विद्रधि : पाठा, वरुण ।

अपस्मार : बचा, मुलेठी, निशोथ, आक ।

अम्लपित्त : बचा, भृङ्गराज, करंज, वासा, पिप्पली ।

अर्श : कूष्माण्ड, कुटज, भाँग, बचा, एरण्ड, कुचला, सहजन, करंज, नीम, हरिद्रा, बिल्व, अरणी, पाटला, काचनार, अर्जुन, पिप्पली, नीबू, चित्रक, जीरा, निशोथ, सेंहुड़, अपामार्ग, पाठा, कुलथी, वरुण, श्वेतचन्दन, हरीतकी, आँवला, गिलोय, नागकेशर, तिल ।

अश्मरी : एरण्ड, बड़ी कटेली, अपामार्ग, कुलथी, गोखरू, वरुण ।

अस्थिभंग : अर्जुन, हल्दी ।

अक्षिदाह : एरण्ड ।

आन्त्रवृद्धि : बचा, हरीतकी ।

आमवात : एरण्ड, सोनपाठा, सोंठ, गोखरू, हरीतकी ।

आक्षेप : भाँग ।

इन्द्रलुप्त : बड़ी कटेली (बृहती) इन्द्रायण ।

उन्माद : कूष्माण्ड, सर्पगंधा, इन्द्रायण ।

उदरकृमि : हींग, सहजन, नीम, कालीमिर्च, अजवायन, कुटकी, कबीला ।

उदररोग : जामुन ।

उदरशूल : हींग, कुचला, सहजन, करंज, नीबू, अजवायन, पोदीना ।

उपदंश : सत्यानाशी ।

उरुस्तम्भ : अरणी ।

कंठरोग : हरीतकी ।

कफपित्त : जीरा ।

कमरदर्द : एरण्ड ।

कर्णमूलशोथ : कुचला ।

कर्णशूल : हींग, प्याज, लहसुन, सोंठ, अजवायन ।

कर्णस्राव : गुग्गुल, लोध ।

कामला : नीम, निशोथ, घीकुवार, दारुहल्दी, द्रोणपुष्पी, गिलोय ।

कास : प्याज, लहसुन, अर्जुन, मुलेठी, पिप्पली, कालीमिर्च, बड़ी कटेली (बृहती), आक, सेंहुड़ ।

किक्कस : वरुण ।

कुक्कुरदंश : सत्यानाशी ।

कुष्ठ : भृङ्गराज, नीम, खदिर, बाकुची, चकवड़, सप्तपर्ण, तुलसी ।

कृमिरोग : पोदीना, पलाश, अश्वगंधा ।

केशों का गिरना : भृङ्गराज, नीम, जटामांसी ।

केशकृष्णीकरण : भृङ्गराज, काकमाची, जटामांसी ।

गण्डमाला : हरिद्रा, जायफल ।

गर्भिणीशूल : बला :

गुल्म : कबीला, सेंहुड़, पलाश, शरपुंखा, हरीतकी ।

चोट : नीबू, अर्जुन, हरीतकी, घीकुवार ।

छाले : कचनार, धनिया, बबूल, पुनर्नवा, हरीतकी ।

जलोदर : करंज ।

ज्वर : नीम, वासा, पिप्पली, सोंठ, हींग, करंज, अजवायन, निशोथ, कुटकी, अपामार्ग, तुलसी, आँवला, गिलोय ।

ज्वर-प्रलाप : भाँग, हींग ।
टॉनसिल : अमलतास ।
डिब्बा : हींग ।
तिल्ली : हरीतकी, पिप्पली, इन्द्रायण, आक, घीकुवार, सेमल, पलाश, शरपुंखा, विदारीकन्द ।
तृष्णा : इलायची ।
दन्तगत विष : सप्तपर्ण ।
दन्तरोग : नीम, लवंग, अजवायन, शरपुंखा, अकरकरा ।
दंश : प्याज ।
दाद : अमलतास, चकवड़, कालीमिर्च, हरीतकी ।
दाह : नीम, इलायची ।
धनुर्वात : एरण्ड, कालीमिर्च ।
धातुपुष्टि : गूलर, मुलेठी ।
नकसीर : प्याज ।
नजला : अफीम ।
नपुंसकता : हींग, कुचला, लवंग ।
नाड़ीशूल : प्याज ।
नालपरिवर्तन : पलाश ।
नेत्ररोग : लहसुन, सहजन, शतावरी, दारुहल्दी, लोध, बहेड़ा, लवंग, मुलेठी, पुनर्नवा, हरीतकी, आँवला, कालीमिर्च, जीरा, सौंफ, पलाश ।
पसली चलना : सेंहुड़ ।
प्रतिश्याय : पोदीना ।
प्रदर : हरीतकी, हरिद्रा, कचनार वासा, धाय, बबूल, सेमल, दारुहल्दी, गूलर, श्वेतचन्दन, बला, जामुन ।
प्रमेह : प्याज, हलदी, जायफल, कूटज, बबूल, दारुहल्दी, आँवला, गिलोय ।
प्रवाहिका : बाकुची, कालीमिर्च, सौंफ, धाय ।
पाण्डु : मुलेठी, हरीतकी, हलदी ।
पीनस : कालीमिर्च ।
फोड़ा : गुग्गुल, निर्गुण्डी, प्याज, भृङ्गराज, बाकुची, दालचीनी, घीकुवार, चिरायता, कलिहारी गूलर, अश्वगन्धा ।
बधिरता : बिल्व अपामार्ग ।
बलवृद्धि : हरीतकी ।
बस्तिशोथ : पाठा, तुलसी ।
बिवाई : सेंहुड़ ।
भारात्पता : विदारीकन्द ।
भगन्दर : गुग्गुल ।
मधुमेह : बिल्व गूलर, जामुन ।
मन्दाग्नि : लहसुन ।
मलबन्ध : एरण्ड, सेंहुड, नीबू ।
मस्सा : प्याज, कुचला, वासा ।
मस्तिष्कदौर्बल्य : मालकांगनी, बिल्व, आँवला ।

मसूरिका : नीम, हरिद्रा, लवंग, नीबू।

मानसिक रोग : शंखपुष्पी, सत्यानाशी, घीकुआर, चोपचीनी, जटामांसी।

मासिक धर्म : भाँग, हींग, प्याज।

मासिकस्राव में कष्ट : मालकांगनी।

मुखकृष्णता : आक, जायफल, सेमल।

मुखरोग : खदिर, सेमल।

मुहाँसा : प्याज, अर्जुन।

मूढ़गर्भ : सेंहुड़, पुनर्नवा।

मूर्च्छा : प्याज, सहजन।

मूषकविष : बचा, शरपुंखा।

मूत्रकृच्छ्र : मुलेठी, सोंठ अजवायन, पाठा, गोखरू, आँवला, इलायची।

मूत्रदाह : बिल्व, धनिया।

मूत्रातिसार : बला।

मूत्राशयशोथ : सोनपाठा।

यकृतविकार : कुटकी, चिरायता, काकमाची, विदारीकन्द, आँवला।

रक्तचापाधिक्य : सर्पगन्धा।

रक्तपित्त : कूष्माण्ड, कांचनार, अर्जुन, वासा, मुलेठी, निशोथ, आँवला, सेमल, पलाश, शतावरी, श्वेतचन्दन, हरीतकी, जामुन।

रक्तवमन : मुलेठी।

रक्तविकार : सत्यानाशी, गिलोय, चोपचीनी।

रक्तस्राव : गूलर।

रसायन : भृङ्गराज, मुलेठी, इन्द्रायण, सेमल, कौंच, शतावरी, अकरकरा, गोखरू, अश्वगन्धा, हरीतकी, आँवला, विधारा।

रक्ताभिष्यन्द : पलाश, लाजवन्ती।

वमन : नीम, बिल्व, नीबू, धनिया, तुलसी, हरीतकी, जामुन।

व्रण : हींग, खदिर, नागरमोथा, लोध, चित्रक, वरुण, कबीला, धाय, अपामार्ग।

वाणीदोष : बचा।

वातगुल्म : लहसुन।

वातरक्त : मालकांगनी, इन्द्रायण, कौंच, कलिहारी, अश्वगन्धा, अकरकरा, तिल, जीरा, गुग्गुल, चकवड़, जटामांसी।

विरेचन : अमलतास, मुलेठी।

विशूचिका : लवंग, नागरमोथा, पोदीना अपामार्ग।

विष : हींग, नीम।

विषमज्वर : लहसुन, जीरा, हरीतकी नीम, द्रोणपुष्पी।

वृक्कशूल : एरण्ड।

वृक्कशोथ : कौंच।

वृश्चिकदंश : सोंठ, जीरा पोदीना, आक, पलाश, अपामार्ग।

शस्त्रक्षत : शरपुंख ।

शारीरिक शैथिल्य : विदारीकन्द ।

श्वास : हींग, बड़ी कटेली (बृहती), अश्वगन्धा ।

श्वासकास : मालकांगनी, बहेड़ा, भृङ्गराज, वासा, लवंग, सत्यानाशी ।

शिरःशूल : सहजन, चकवड़, पाटला, लवंग, धनिया, इलायची, श्वेतचन्दन ।

शिरोरोग : आँवला ।

शिशु-दौर्बल्य : अश्वगन्धा ।

शीघ्रप्रसव : चकवड़ ।

शीतपित्त : हींग, हरिद्रा, अरणी, गम्भारी, जीरा, अजवायन, कुलथी ।

शूल : अफीम, हींग, पिप्पली, कालीमिर्च, विदारीकन्द, हरीतकी ।

शोथ : सर्पगन्धा, गुग्गुल, कालीमिर्च, एरण्ड, निर्गुण्डी, लहसुन, पाटला, बहेड़ा, सोंठ, चित्रक, चिरायता, पुनर्नवा, गोखरु ।

शोधन : नीम ।

श्लीपद : एरण्ड, करंज, आक, पलाश, हरीतकी ।

सर्पविष : अपामार्ग ।

संधिशोथ : निर्गुण्डी, तुलसी ।

सूखारोग : गम्भारी, द्रोणपुष्पी, गूलर ।

स्तन्यशुद्धि : चिरायता, सप्तपर्ण, विदारीकन्द ।

स्नायुक : निर्गुण्डी ।

स्मरणशक्ति-दौर्बल्य : शंखपुष्पी, कूष्माण्ड, बचा ।

स्वरभंग : मुलेठी, कालीमिर्च ।

स्वेदावरोध : हरीतकी ।

स्त्रीरोग : भृङ्गराज, करंज, इन्द्रायण, लोध, अशोक, जीरा, अजवायन, पोदीना, सौंफ, चोपचीनी ।

हिक्का : पाटला, श्वेतचन्दन ।

हिस्टीरिया : हींग, सर्पगंधा, शंखपुष्पी, जटामांसी ।

हृदयरोग : लहसुन, अर्जुन, कुटकी, आँवला ।

हृदयशूल : अजवायन ।

क्षय : कूष्माण्ड, बासा, अश्वगंधा ।

नाड़ी-संस्थान प्रभावक वर्ग | १

१. अकरकरा

परिचय : १. इसे आकरकरम (संस्कृत), अकरकरा (हिन्दी), आकरकरा (बंगला), अक्कलकाढा (मराठी), अकोरकरो (गुजराती), अक्किरकरम (तमिल), अकरकरम (तेलुगु) तथा एनासायक्लस पाचरे (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा काण्ड पर ग्रन्थियों तथा रोमवाला होता है। जड़ ३-४ इञ्च लम्बी और आधी इञ्च या उससे कम मोटी होती है।

३. आजकल यह बंगाल (भारत) में अधिक मिलता है।

रासायनिक संगठन : इसमें पायरेथ्रीन नामक एल्केलायड तथा एक उड़नशील तेल होता है।

गुण : यह स्वाद में चरपरा, पचने पर कटु, रूखा, तीक्ष्ण तथा गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव प्रजनन-संस्थान पर बाजीकरण रूप में पड़ता है। यह उत्तेजक, पीड़ाहर, शोथहर, कीटाणुहर, लालस्रावक्षोभक, अग्नि-दीपक, रक्त-शोधक, शोथहर, कफहर, कण्ठ को हितकर, मूत्रजनक तथा कटु पौष्टिक है।

प्रयोग : वातरोग : अपतानक, पागलपन तथा विभिन्न वातरोगों में इसके चूर्ण का प्रयोग किया जाता है। वात-शूल में इसका चूर्ण तेल में मिलाकर मलना चाहिए। यह पक्षाघात, आर्दित आदि में भी गुणकारी है।

२. **दांत-मसूड़ों के रोग :** इसका महीनचूर्ण कर मंजन किया जाता है। कण्ठ-प्रकोप में इसका लेप करते हैं। जिह्वास्तम्भ तथा स्वरभेद में इसके टुकड़े करके चूसना चाहिए।

२. अफीम (अहिफेन)

परिचय : १. इसे आफूक, अहिफेन (संस्कृत), अफीम (हिन्दी), आफिम (बंगला), अफू (मराठी), अफीण (गुजराती), अफमून (अरबी) तथा पेपेवर सोम्नीफेरम (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा ३-४ फुट ऊँचा, हरे रेशों से युक्त और चिकने काण्डवाला होता है। इसके पत्ते लम्बे, डंठलरहित, गुड़हल के पत्तों से कुछ मिलते-जुलते, आगे के हिस्से में कटे होते हैं। फूल सफेद रंग के और कटोरीनुमा बड़े सुहावने होते हैं। इसके फल छोटे और अनार की आकृति के होते हैं। जड़ साधारणतया छोटी होती है।

३. यह भारत में विशेषतः उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, असम और विन्ध्यप्रदेश में पैदा होती है। पश्चिमोत्तर प्रान्त में इसकी खेती की जाती है।

४. मुख्यतः फूलों के रंगों के अनुसार यह तीन प्रकार की होती है : १. पिलाई लिये सफेद (खसखस सफेद), २. लाल (खसखस मन्सूर) तथा ३. काला या नीला (खसखस स्याह)।

सायंकाल इस पौधे (खसखस) के कच्चे फलों के चारों ओर चीरा लगा देने पर दूसरे दिन प्रातः वहाँ दूध के समान निर्यास पाया जाता है। उसे खुरचकर सुखा लेने पर अफीम बन जाती है। सूखे फल को 'डोंडा' (पोश्त) कहा जाता है। इसके बीज राई की तरह काले या सफेद रंग के होते हैं, जिन्हें 'पोस्तादाना' (खसखस) कहते हैं। पोश्ता लगभग १४ प्रकार का होता है।

चिकित्सा-शास्त्र में इसे उपविष-वर्ग में रखा गया है।

रासायनिक संघटन : इसमें मार्फीन, नार्कोटीन, कोडीन, एपोमार्फीन, आपिओनियन, पापावरीन आदि क्षारतत्त्व (एल्केलाइड) तथा लेक्टिक एसिड, राल, ग्लूकोज, चर्बी व हल्के पीले रंग का निर्गन्ध तेल होता है।

गुण : यह स्वाद में कड़वी, कसैली, पचने पर कटु तथा गुण में रूखी होती है। इसका मुख्य प्रभाव नाड़ी-संस्थान पर मदकारी (नशा लानेवाला) होता है। यह नींद लानेवाली, वेदना-रोधक, श्वास-केन्द्र की अवसादक, शुक्रस्तम्भक और धातुओं को सुखानेवाली है।

प्रयोग : मोतियाबिन्द : चौथाई रत्ती अफीम और ३ रत्ती केसर की गोली बनाकर बादाम के हलुए के साथ खाने से पुराना सिरदर्द, बार-बार होनेवाला नजला और जुकाम रुक जाता है। आँखों में मोतियाबिन्द उतर रहा हो, तो वह भी इससे रुक जाता है। दो सप्ताह इसके सेवन के बाद केवल बादाम और केसर का सेवन करें, अफीम निकाल दें। आवश्यकता होने पर पुनः इसे लें। यह अनुभूत प्रयोग है।

२. दस्त : चार रत्ती अफीम एक छुहारे के अन्दर रख उसे आग में भूनें। फिर उसे पीसकर, मूँग के बराबर १-१ रत्ती की गोली बना लें। इसके सेवन से मरोड़ देकर आँवसहित होनेवाले दस्तों में लाभ होता है। बच्चों को आधी मात्रा देनी चाहिए। पोस्त (फल के छिलके या 'पोस्त-डोंडा') उबालकर पीने से अतिसार और पतले दस्त रुक जाते हैं। अधिक मात्रा में यह मादक हो जाता है।

३. नजला : एक तोला खसखस घी के साथ कड़ाही में भूनें। फिर चीनी मिला हलुआ बनाकर लें। प्रातःकाल इसके सेवन से पुराना सिर-दर्द और प्रतिश्याय (नजला) दूर हो जाते हैं।

४. विभिन्न शूल : अफीम को तेल या घी में मिलाकर वेदना-स्थानों पर (बवासीर के मस्से, नेत्र, पसली के दर्द) तथा शिरःशूल में भी सिर पर लेप करें। लेकिन कान के दर्द में तेल ही डालें, घृत नहीं।

अफीम २ रत्ती और एलुआ १ तोला अदरख के रस में पीसकर धीमी अग्नि पर पका लेप बना लें। कपड़े पर रखकर किसी प्रकार की चोट, मोच या सूजन पर लगा दें तो निश्चित आराम होगा।

प्रतिरोध : अफीम के अधिक प्रयोग से तन्द्रा, निद्रा, हृदय का अवसाद होने लगे तो तुरन्त राई-नमक मिलाकर दें तथा वमन करा दें। अरहर की कच्ची दाल पानी में पीसकर या हींग पानी में घोलकर पिला देने से भी तुरन्त आराम पहुँचता है।

सावधानी : यह मादक द्रव्य है। अधिक प्रयोग से विषाक्त प्रभाव सम्भव है। अतः अत्यावश्यक होने पर ही इसका प्रयोग करें। फिर भी कभी अधिक मात्रा में नहीं। अतिआवश्यक होने पर ही बच्चों, वृद्धों तथा सुकुमार स्त्रियों को बड़ी सावधानी एवं कम मात्रा में ही इसे दिया जाय।

३. अमलतास

परिचय : १. इसे आरग्वध (संस्कृत), अमलतास (हिन्दी), सोंदाल (बंगाली), बाहवा (मराठी), गरमालो (गुजराती), कोंड्रै (तमिल), आरग्वधमु (तेलुगु), खियार शंबर (अरबी) तथा केसिया फिस्टुला (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष मध्यम आकार का २५-३० फुट ऊँचा होता है। तना सुदृढ़ मजबूत और छाल हरी-कत्थई रंग की और शाखाएँ सीधी होती हैं। इसके पत्ते लगभग १ फुट लम्बे होते हैं, जो १२ से १८ इञ्च तक की लम्बी सींकों पर ८ से १६ जोड़े पत्रकों में लगे होते हैं। ये छोटे पत्ते (पत्रक) जामुन जैसे चौड़े और चिकने होते हैं। फूल पीले रंग के पत्तों के समान ही लम्बे और सुगंधित डंठल पर लगते हैं। इसकी फली १–३ फुट लम्बी और १ इञ्च गोल; कच्ची अवस्था में हरी, पकने पर काली (ललाई लिये कत्थई रंग की) और बेलन के आकार की होती है। बीज चपटे, चिकने, काले, गोल फली और पैसे के समान खण्डों में सिरस के आकार के, पीलापन लिये कत्थई रंग के होते हैं।

३. यह प्रायः सब प्रान्तों में पाया जाता है।

रासायनिक संगठन : इसके फल के गूदे में शर्करा ६० प्रतिशत, पिच्छिल द्रव्य, ग्लूटीन, पेकटीन, रंजक द्रव्य, कैलशियम, आक्जलेट, क्षार, निर्यास तथा जल होते हैं।

गुण : यह स्वाद में मीठा, कडुआ, पचने पर मीठा तथा शीतल, भारी, मृदु और चिकना होता है। इसका मुख्य प्रभाव त्वचा-ज्ञानेन्द्रिय पर कुष्ठघ्न तथा आन्त्र पर मृदु-विरेचक रूप में पड़ता है। यह शोथहर, पीड़ाशामक, रक्तशोधक, कफ-निःसारक, मूत्रजनक, दाहशामक तथा ज्वरहर है।

प्रयोग १. विरेचन : रक्त में उष्णता बढ़ने और शरीर में मल संचित होने पर या वातरक्त, आमवात आदि रोगों में अमलतास का विरेचन दिया जाता है।

२. **दाद :** अमलतास के पत्तों के रस का लेप करने पर दाद, खाज में लाभ होता है।

३. **टॉन्सिल :** यदि गले में ग्रन्थि (टॉन्सिल) अधिक बढ़ जाय तथा पानी न निगला जाता हो, तो इसकी छाल के कुछ गर्म-गर्म काढ़े से गरारे करने पर तुरन्त आराम होता है।

४. एरण्ड

परिचय : १. इसे एरण्ड (संस्कृत), रेंडी—अण्डी (हिन्दी), भोंडा (बंगाली), एरण्ड (मराठी), एरडी (गुजराती), अमनकु (तमिल), एरामुडपु (तेलुगु), खिर्वअ (अरबी) तथा रिसिनस कॉम्युनिस (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष (गुल्म) छोटा, ५ से १२ फुट ऊँचा होता है। पत्ते हरापन या ललाई लिये, १-१॥ फुट के घेरे में, गोलाकार, कटे हुए,

अँगुलियों सहित हथेली के आकार-से, ४-१२ इञ्च लम्बे और पीले डंठल पर लगे होते हैं। फूल पीलापन लिये गुच्छे में मोटे डंठल पर रहते हैं। फल गोल, कई एक साथ, कोमल काँटों से युक्त, कच्ची अवस्था में हरे तथा पकने पर धूसर वर्ण के होते हैं। वे पक जाने पर सूर्य की गर्मी से फट जाते हैं। प्रत्येक फल में तीन-तीन बीज, ललाई लिये काले रंग के, सफेद चितकबरे होते हैं।

३. यह सारे भारत में होता है, मद्रास, बंगाल तथा बम्बई प्रदेशों में इसकी अधिक खेती की जाती है।

४. एरण्ड की दो जातियाँ हैं : श्वेत एरण्ड (पूर्व-वर्णित) तथा रक्त एरण्ड। छोटे तथा बड़े बीजों के अनुसार इसके और दो प्रकार हो जाते हैं।

रासायनिक संघटन : इसमें स्थिर तेल ४५ प्रतिशत, मांसाहार (प्रोटीन) २० प्रतिशत, भस्म (एश) १० प्रतिशत, स्टार्च, शर्करा, म्युसिलेज; बीजों में राइसिन नामक एक अत्यन्त विषैला तत्त्व होता है।

गुण : यह स्वाद में मीठा, चरपरा, कसैला, पचने पर मीठा, भारी चिकना, गर्म और तीक्ष्ण होता है। इसका मुख्य प्रभाव वातनाड़ी-संस्थान पर पड़ता है। यह शोथहर, पीड़ानाशक, विरेचक, हृदयबलदायक, श्वासकष्टहर, मूत्रविशोधक, कामोत्तेजक, गर्भाशय और शुक्र-शोधक तथा बलदायक है।

प्रयोग : **१. आमवात** : आमवात की (सटेज्म) गाँठों में सूजन और दर्द होने पर १ तोला एरण्ड तेल में ३ माशा सोंठ का चूर्ण मिलाकर देने से लाभ होता है।

२. **कमर-दर्द** : एरण्ड-बीजों का छिलका निकाल उसकी आधा पाव (१० तोला) गिरी एक सेर गाय के दूध में पीसकर पकायें। मावा (खोया) जैसा बन जाने पर उतार लें। यह १-२ तोला तक सुबह-

शाम सेवन करने से कमर-दर्द, गृध्रसी (साइटिका) और पक्षाघात में आराम होता है।

३. टिटनेस : धनुस्तम्भ, हिस्टीरिया, आक्षेप और जकड़न में एरण्ड-तेल से मालिश कर सेंकना चाहिए।

४. रक्त-आमातिसार : एरण्ड की जड़ को दूध के साथ पीने से रक्त-आमातिसार मिट जाता है।

५. श्लीपद : श्लीपद (फायोलेरिया) पर एरण्ड-तेल गोमूत्र में मिलाकर एक मास तक पीने से लाभ होता है।

६. वृक्कशूल-पथरी : दर्दगुर्दा (वृक्कशूल) और उदरशूल में एरण्ड की जड़ का काढ़ा सोंठ डालकर पीने से लाभ होता है। इसमें हींग और नमक मिलाने से पथरी भी निकल जाती है।

७. मलबन्ध-बवासीर : मलबन्ध, कब्ज बवासीर और आँव में एरण्ड का तेल ५ तोला पिलाने से लाभ होता है। उससे विरेचन होकर वायु का अनुलोमन हो जाता है।

८. शोथ : किसी स्थान पर शोथ (सूजन) या वेदना (दर्द) हो, वहाँ एरण्ड-तेल लगाकर उसीके पत्तों को गर्म करके बाँध देना चाहिए।

९. योनि-शूल : योनि-शूल में एरण्ड-तेल में रूई का फाहा भिगोकर योनि में रखने पर लाभ होता है। प्रसवकाल के कष्ट में भी इसका प्रयोग करना चाहिए।

१०. आँखों की जलन : कभी आँखों में सोडा, चूना, आक आदि का दूध पड़ जाय तो १-२ बूंद एरण्ड-तेल आँखों में डालने से जलन और दर्द में शीघ्र आराम हो जाता है।

५. कुचला

परिचय : १. इसे कुपीलू (संस्कृत), कुचला (हिन्दी), कुंचिला (बंगाली), काजरा (मराठी), झेरकोचना (गुजराती) मेट्रिकोट्राई

(तमिल), मुष्टिविट्टुलु (तेलुगु), अजराकि (अरबी) तथा स्ट्रिक्नस नक्सवोमिका (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष ४०-५० फुट ऊँचा होता है। छाल पतली, मुलायम तथा मटमैली रंग की तथा शाखाएँ पतली और मजबूत होतीं हैं। पत्ते चमकीले, चिकने, हरापन लिये सफेद, ३-६ इञ्च तक लम्बे और कुछ दुर्गन्धयुक्त होते हैं। फूल छोटे, हरापन लिये सफेद, हल्दी की गन्ध से युक्त तथा फल मांसल, गोलाकार छोटी नारंगी की तरह, कच्ची अवस्था में हरे और पकने पर पीले होते हैं। फल का छिलका मजबूत तथा अन्दर का गूदा सफेद, कडुवा, २-५ बीजोंवाला होता है। बीज लगभग आध इंच के घेरे में, चपटे, सफेद कत्थई रंग के तथा मजबूत होते हैं।

३. यह भारत के गर्म प्रदशों तथा मध्यप्रदेश, कश्मीर, नैनीताल, उड़ीसा तथा मद्रास के जंगलों में होता है।

रासायनिक संघटन : इसमें स्ट्रिक्नीन १·२५ से १·५ प्रतिशत, कुसीन १·७ प्रतिशत, वोमिसिन, आइगास्युरीन लोगनिन (एक ग्लूकोसाइड), प्रोटीन ११ प्रतिशत, पीत रंजक द्रव्य (यलो कलरिंग मैटर), गोंद, स्नेह, स्टार्च, शर्करा ६ प्रतिशत, फास्फेट, भस्म (एश) २ प्रतिशत आदि होते हैं।

गुण : यह स्वाद में कडुवा, चरपरा, पचने पर कटु तथा गुण में रूक्ष, हल्का तीक्ष्ण और गर्म है। इसका प्रमुख प्रभाव वातनाड़ी-संस्थान पर पड़ता है। यह अतिमात्रा में या अशुद्ध सेवन करने पर आक्षेपजनक, मदकारक, शोथहर, दुर्गन्धनाशक, पीड़ानाशक, वातहर, पाचक, कफहर, कामशक्तिवर्धक, कटु पौष्टिक तथा स्वेद-प्रभावक है।

प्रयोग : १. उदरशूल : शुद्ध कुचला २ तोला, कालीमिर्च ४ तोला और काला नमक ४ तोला पीसकर मिला लें। शीतज्वर में इसे २ से ४ रत्ती ज्वर से पूर्व उष्णजल के साथ देने से ज्वर रुक जाता है। उदरशूल में उष्ण जल के साथ ३ रत्ती देने से शूल बन्द हो जाता है।

२. बवासीर : एक तोला शुद्ध कुचला को ८ तोला मिश्री के साथ मिलाकर ४-४ रत्ती की मात्रा बना लें। इसे थोड़े-से घी मिले दूध के साथ लेने पर खूनी-बादी बवासीर, जलन और शूल में आराम होता है। खट्टी डकारें आने और भोजन न पचने पर इसे भोजन के बाद पानी के साथ लें।

३. निमोनिया : शुद्ध कुचला १ तोला, कपूर १ तोला और हींग १ तोला, तीनों अदरख के स्वरस में घोटकर २-२ रत्ती की गोली बना लें। सुबह-शाम इसके सेवन से अग्निमान्द्य, शूल, निमोनिया, आफारा, हृदयशिथिलता आदि में लाभ होता है।

४. मस्सों का दर्द : कुचले को घी में घिसकर बवासीर के मस्सों पर लगाने से तुरन्त दर्द बन्द हो जाता है।

५. कर्णमूल शोथ : कर्णमूल शोथ (मक्स) में कुचला और सोंठ मिलाकर लेप करने से ३ दिन में लाभ होता है।

सावधानी : कुचला (बीज) मादक द्रव्य होने से अधिक सेवन करने पर विषाक्त प्रभाव होता है और झटके आने लगते हैं। अतः इसे ठीक से शुद्ध कर चौथाई से आधी रत्ती तक ही प्रयोग करना चाहिए। विषाक्त प्रभाव दिखाई दे या झटके आयें तो तुरन्त वमन करा आमाशय खूब साफ करा दें और घी-दूध मिलाकर पिलायें तो आराम हो जाता है।

शुद्ध करने की विधि : सर्वप्रथम कुचले के बीजों को दूध में उबालें। मलायम होने पर पानी से साफ कर चाकू से ऊपर का बारीक छिलका निकाल दें। पुनः बीज काटकर बीच की छोटी पत्ती निकाल पीसकर सुखा दें और कपड़े से छान लें। इस तरह यह शुद्ध हो जाता है।

६. कूष्माण्ड

परिचय : १. इसे कूष्माण्ड (संस्कृत), पेठा-कुम्हड़ा (हिन्दी), कुमड़ा (बंगाली) पांढर कोहळ (मराठी), भुरूं कोहळु (गुजराती), बेल्ले गुम्मडि (तेलुगु) तथा बेनिनकासा हिस्पिडा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसकी लता एक वर्ष तक रहती है। पत्ते ४-६ इञ्च की गोलाई में, कड़े और कटे किनारेवाले या ५ भागयुक्त, सफेद रेशों से ढँके लम्बे डंठल पर लगे होते हैं। फूल पीले रंग के तथा फल बड़े अण्डाकार होते हैं।

३. यह भारत में सब जगह पाया जाता है।

रासायनिक संघटन : इसमें श्वेतसार, कुकुर्विटोन नामक एल्केलायड, तिक्तरस, मांससार, मायोसिन, वाइटेलिन, शर्करा तथा क्षार पाये जाते हैं। बीजों में एक स्थिर तेल होता है।

गुण : यह स्वाद में मीठा, पचने पर मीठा तथा गुण में हल्का, शीतल और चिकना होता है। वातनाड़ी-संस्थान पर इसका मेध्य (ब्रेन-टाइनिक) प्रभाव पड़ता है। यह दाहशामक, मूत्रजनक, शुक्रवृद्धिकर, बलकारक, कृमिहर, रक्तस्तम्भक तथा फेफड़ों के लिए बलकारक है।

प्रयोग १. मेधाशक्ति-दौर्बल्य : उष्ण प्रकृतिवालों को कूष्माण्ड का सेवन करना चाहिए। इसका १ तोला स्वरस देने से रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) कम हो जाता है, मेधाशक्ति बढ़ती तथा नींद आती है।

२. उन्माद रोग : उन्माद रोग में नींद न आना, प्रलाप करना आदि लक्षण हों तो पेठे को बीच से काट गूदा निकाल लें और उसे घी में भूनकर हलुआ बनाकर खायें तो निश्चित लाभ होता है। गूदा निकालने के बाद उसकी टोपी बनाकर सिर पर पहनने से भी लाभ होता है।

३. क्षय तथा रक्तपित्त : क्षय में या किसी कारण नाक, मुँह या गुदा से रक्त आता हो तो १-२ तोला छाया में सुखाये हुए इसके छिलकों को पीसकर चीनी मिलाकर प्रातः-सायं लें। इससे निश्चित लाभ होता है।

४. रक्तार्श : रक्तार्श (खूनी बवासीर) में इसका स्वरस या अवलेह देना चाहिए।

५. स्मरणशक्ति : ग्रीष्म में इसके बीज ठंडाई में डालकर पीने से दाह की शांति तथा स्मरण-शक्ति की वृद्धि होती है।

७. खदिर (खैर)

परिचय : इसे खदिर (संस्कृत), खैर (हिन्दी), खयेर (बंगाली), काथ (मराठी), खेर (गुजराती), कचुकट्टि (तमिल), पोडलमानु (तेलुगु) तथा एकेशिया कटेचू (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष मध्यमाकार और बबूल की जाति का होता है। इसमें छोटे-छोटे काँटे रहते हैं। पत्ते भी बबूल, छिकुर की तरह, टहनियों पर लगी १०-१२ जोड़ सींकों पर ३०–५० जोड़े तक छोटे-छोटे (पत्रकों के रूप में) होते हैं। पूरा सत्ता पक्षाकार बन जाता है। फूल हल्के-पीले रंग के, छोटे-छोटे तथा फली २-३॥ इंच तक लम्बी, आध-पौन इंच चौड़ी, पतली, चमकदार और कत्थई रंग की होती है। फली में ५-८ गोलाकार बीज होते हैं।

३. यह सूखे वायुमण्डल में अधिक होता है। हिमालय में ५ हजार फुट की ऊँचाई तक, पश्चिमोत्तर प्रदेश, बम्बई आदि प्रान्तों में पाया जाता है।

४. इसकी कई जातियाँ होती हैं : १. श्वेत-खदिर (पपरिया खैर)। २. रक्तकपिश-खदिर (पखरा खैर)। ३. रक्त-खदिर (विशेषतः पान में प्रयुक्त) और ४. बिट् खदिर (हरिमेद, दुर्गन्धयुक्त खैर)।

खैर के वृक्ष की छाल से 'खदिर-सार' तैयार किया जाता है। यह काले कत्थई रंग का जमाया हुआ पदार्थ ही कत्था है।

रासायनिक संघटन : इसमें खदिरसार (कत्था) ३५ प्रतिशत तथा टैनिन द्रव्य ५७ प्रतिशत मिलता है। इसमें कैटेचीन नामक सत्त्व मिलता है।

गुण : यह स्वाद में कड़ुआ, कसैला, पचने पर कटु, हलका तथा सूक्ष्म है। इसका मुख्य प्रभाव त्वचा-ज्ञानेन्द्रिय पर कुष्ठघ्न (कुष्ठ आदि चर्मरोगों का नाश करनेवाला) रूप में पड़ता है। यह रक्त का स्तम्भक, वर्धक, शोधक, दन्त्य (दाँत तथा मुखरोगहर), वर्ण्य (रंग को ठीक

करनेवाला), व्रण-शोधक (घाव-शोधक), स्तम्भक (दस्त बन्द करने-वाला) मेदशोषक, गर्भाशय-शिथिलताहर तथा शुक्रशोधक है।

प्रयोग . **कुष्ठ :** खदिर-काष्ठ के छोटे-छोटे टुकड़े कर पाताल-यन्त्र से तेल निकाल लें। फिर उसमें घी, शहद और आँवले का रस मिलाकर सेवन करें तो सब प्रकार के कुष्ठ दूर हो जाते हैं। मात्रा अवस्था-नुसार लें।

२. **मुख रोग :** खदिर की छाल का काढ़ा बनाकर उसे तेल में पका लें। प्रतिदिन इस तेल से मंजन करने पर दन्तरोग नहीं होते और दाँत मजबूत हो जाते हैं। कत्थे को पानी में घोलकर कुल्ले करने से मुख के छाले भी ठीक हो जाते हैं।

३. **व्रण :** किसी प्रकार के फोड़े को कत्था और त्रिफला के काढ़े से धोने से उसकी शुद्धि हो जाती है। कत्था १ तोला, कबीला १ तोला और मुरदासंग १ तोला मिलाकर चूर्ण बना लें। गीले फोड़े पर उसे रूई से और सूखे फोड़े पर घी या वैसलीन में मिला मरहम लगाने से सब प्रकार के फोड़े ठीक हो जाते हैं।

८. गुग्गुल

परिचय : १. इसे गुग्गुल (संस्कृत), गूगल (हिन्दी), गुग्गुल (बंगाली), गुगुल-मुकुल (मराठी), गुग्गल (गुजराती), मैहिषाक्षी (तमिल), गुग्गिल चेट्टु (तेलुगु) तथा बाल्स-मोडेम्ड्रोन मुकुल (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष छोटा, झाड़दार, हरापन लिये, पील छालवाला होता है, पत्ते लम्बे, कागज के समान पतले, काँसेदार, चमकीले और नीम की तरह जुड़े होते हैं। इसकी लकड़ी कोमल और सफेद होती है। फूल लाल रंग के २-३ एक साथ लगते हैं। फल मांसल, लम्बे, गोल और पकने पर लाल रंग के होते हैं।

३. इसके पौधे अधिकतर रेगिस्तानी भूमि में होते हैं। भारत में मारवाड़, कच्छ, काठियावाड़, असम, पूर्वी बंगाल और मैसूर में यह पाया जाता है।

४. इस वृक्ष के गोंद को गुग्गुल कहते हैं। गर्मी के समय सूर्य की धूप से तपकर गोंद पिघलती और शरदृऋतु में जम जाती है।

गुग्गुल की दो जातियाँ मिलती हैं : कण-गूगल (ललाई लिये पीले कणोंवाला) तथा भैंसा गूगल (हरापन लिये पीला)। प्राचीन शास्त्रों में इसके पाँच भेद वर्णित हैं—महिषाक्ष (काला), महानील (नीला), कुमुद (कपिश), पद्म (लाल) तथा कनक (पीला) गुग्गुल।

रासायनिक संघटन : इसमें उड़नशील तेल, रालयुक्त गोंद तथा कड़ुवा सत्त्व पाये जाते हैं।

गुण : यह स्वाद में कड़ुवा, चरपरा, मीठा, कसैला, पचने पर कड़ुवा तथा गुण में हलका, तीक्ष्ण और चिकना होता है। वातनाड़ी-संस्थान पर इसका मुख्य प्रभाव पड़ता है। यह पीड़ाहर, कीटाणुनाशक, नाड़ियों को बलकारक, वायुसारक, अग्निदीपक, यकृत-उत्तेजक, हृदय-बलदायक, शोथहर, कफ-निःसारक, रसायन तथा बलदायक है।

प्रयोग : १. वातव्याधि : वातव्याधि, गृध्रसी (साइटिका) में ४ तोला गुग्गुल और ५ तोला रास्ना को घी में मिला गोलियाँ बना लें। १॥-१॥ माशे की एक-एक गोली प्रातः-सायं खाने से लाभ होता है।

२. सूजन : शरीर में शोथ (सूजन) होने पर गोमूत्र के साथ ४ रत्ती गुग्गुल सेवन करने से लाभ होता है। इसे गोमूत्र में मिला बाहर से लेप करने पर भी लाभ होता है।

३. फोड़ा-फुन्सी : फोड़ा-फुन्सी में जब सड़न और पीव हो, तो त्रिफला के काढ़े के साथ ४ रत्ती गुग्गुल लेना चाहिए। अथवा सायं ५ तोला

पानी में त्रिफलाचूर्ण ६ मासा भिगोकर प्रातः गर्म कर छानकर पीने से लाभ होता है।

४. भगन्द : भगन्द (फिचुला) में त्रिफला के साथ गुग्गुल सेवन करने से लाभ होता है।

५. कान का बहना : गुग्गुल को अग्नि पर डालकर धुँआँ लेने से कान का बहना बन्द हो जाता है।

६. फोड़ा-शोथ : फोड़ा या सूजन होने पर गुग्गुल गर्म कर कपड़े पर लगा लेप करने से लाभ होता है।

शुद्ध करने की विधि : यह गोंद है। इसे शुद्ध करके ही लेना चाहिए। सर्वप्रथम गुग्गुल को त्रिफला के काढ़े में भिगो दें। फिर बारीक कपड़े से छान कड़ाही में शुद्ध घी में भूनें। जब सुगन्ध आये तथा चिपकना कम हो जाय तब इसे शुद्ध जानें।

अपथ्य : गुग्गुल सेवन करते समय खटाई, मिर्च, तेज मसाले, मैथुन तथा व्यायाम और अत्यन्त धूप का सेवन छोड़ देना चाहिए।

९. चकवड़

परिचय : १. इसे चक्रमर्द (संस्कृत), चकवड़-पंबाड़ (हिन्दी), चाकुंका (बंगाली), टाकला (मराठी), कुवाडियो (गुजराती), तघरे (तमिल), तगिरिसे (तेलुगु), कुल्व (अरबी) तथा कैसिआ टोरा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा २–५ फुट ऊँचा, एक वर्ष तक रहनेवाला और दुर्गन्धित होता है। पत्ते तीन जोड़े फाँकों से युक्त १-१॥ इञ्च लम्बे होते हैं, जो रात में आपस में मिल जाते हैं। फूल पीले रंग के होते हैं। फली पतली और ४–६ इञ्च लम्बी होती है। बीज २०-३० की संख्या में कत्थई रंग के होते हैं।

यह सम्पूर्ण भारत में, विशेषतः गरम प्रदेशों में होता है।

रासायनिक संगठन : इसके बीजों में क्राइसोफेनिक एसिड की तरह एक ग्लुकोसाइड होता है। पत्तों में कथार्टीन के समान एक रेचक तत्त्व, कुछ खनिज और रंजक द्रव्य मिलते हैं।

गुण : यह स्वाद में कटु (बीज में), कुछ मीठा (पत्तों में), पचने पर कटु तथा हल्का, रूक्ष एवं गर्म होता है। इसका मुख्य प्रभाव त्वचा-ज्ञानेन्द्रिय पर कुष्ठघ्न (अनेक चर्मरोग-नाशक) पड़ता है। यह मेदहर, विषनाशक, नाड़ीबलकारक, रेचक, कृमिनाशक, कफनिःसारक, हृदय-बलकारक तथा यकृत-उत्तेजक है।

प्रयोग : १. सिध्मकुष्ठ : चकवड़ और राल का कांजी के साथ लेप करने से सिध्मकुष्ठ में लाभ होता है।

२. शिरःशूल : इसके बीजों को नीबू में पीसकर सिर-दर्द पर लगाना चाहिए। आध-शीशी के दर्द पर बीजों का नस्य भी लाभ करता है।

३. दाद : चकवड़ के बीज उसके मूल के स्वरस में पीसकर दाद पर लेप करने से तुरन्त लाभ होता है। इन्हें नीबू या दही में भी पीसकर लगा सकते हैं।

४. वातरोग : वातरोगों में सरसों के तेल में चकवड़ के पत्तों का शाक भूनकर खिलायें। लेकिन ध्यान रहे कि इसे अधिक खाने से दस्त होने लगते हैं।

५. शीघ्र-प्रसव : चक्रमर्द की जड़ पीसकर योनि में रखने से शीघ्र प्रसव हो जाता है।

१०. जटामांसी

परिचय : १. इसे जटामांसी (संस्कृत), बालछड़, जटामांसी (हिन्दी), जटामांसी (बंगाली), जटामांसी (मराठी), बालछड़

(गुजराती), जटामांसमु (तेलुगु), सुबुलुत्तीब (अरबी) तथा नार्डो-स्टेकिस जटामांसी (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा १-२ इंच ऊँचा, कई वर्ष रहनेवाला और सीधा होता है। भूमि पर इसकी जड़ से २-३ इंच लम्बी, बारीक जटाओं की तरह कई रेशायुक्त शाखाएँ निकलती हैं। इसके पत्ते पतले, लगभग १ इंच चौड़े और ६-७ इञ्च लम्बे, फूल गुलाबी, गुच्छेदार, शाखाओं के अन्त में तथा फल छोटे, गोल, रेशायुक्त होते हैं। जड़ रेशायुक्त होने के साथ सुगन्धित भी होती है।

३. यह हिमालय के वनों में १६-१७ हजार फुट की ऊँचाई पर, कश्मीर, नेपाल आदि प्रदेशों में जलीय स्थानों में होती है।

रासायनिक संघटन : इसमें हरापन लिये पीला, उड़नशील, कपूर की गन्ध की तरह, कडुआ तेल मुख्य तत्त्व होता है। इसके अलावा राल के समान काला पदार्थ, कपूर, गोंद आदि भी पाये जाते हैं।

गुण : यह रस में चरपरी, कसैली, मीठी, पचने पर कड़वी तथा गुण में तीक्ष्ण, हल्की और चिकनी होती है। इसका वातनाड़ी-संस्थान पर भूतघ्न (मानसिक दोषनाशक, संज्ञास्थापक) रूप में मुख्य प्रभाव होता है। यह दाहशामक, त्वचा के रंग को ठीक करनेवाली, उत्तेजक, अग्नि-दीपक, यकृत की उत्तेजक, कफनिस्सारक, आर्तवजनक, केशवर्धक तथा बलप्रद है।

प्रयोग : १. मानसिक विकार : इसका प्रयोग क्वाथ की अपेक्षा 'फाण्ट' या शीतनिर्यास के रूप में विशेष उपयोगी होता है। अतः इसका १ तोला चूर्ण खूब उबलते आध सेर पानी में डाल ढँककर रख दें। प्रातः वह जल छानकर दिन में ४-५ बार थोड़ा-थोड़ा पिलायें। इससे अपस्मार, योषापस्मार, उन्माद आदि मानसिक विकारों में लाभ होता है।

२. **हिस्टीरिया :** १-२ माशा जटामांसी के महीन चूर्ण में ४ रत्ती से

१ माशा तक श्वेत बच का चूर्ण मिलाकर शहद के साथ दिन में ३ बार सेवन कराने से हिस्टीरिया एवं मानसिक चंचलता में लाभ होता है।

३. वातरोग : ४ भाग जटामांसी के चूर्ण के साथ १-१ भाग दालचीनी, सीतलचीनी, सौंफ और सोंठ का चूर्ण तथा ८ भाग मिश्री पीसकर मिला दें। प्रातः-सायं इसकी ३-६ माशा की मात्रा देने से वातविकार, आध्मान एवं शूल में लाभ होता है।

४. बाल झड़ना : रात में जटामांसी का एक पाव मोटा चूर्ण सेरभर पानी में भिगो दें और प्रातः मन्द आँच पर पकायें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर उसमें १ पाव तिल्ली का तेल और ५ तोला जटामांसी का कल्क (चटनी) मिला पुनः पकायें। तेल मात्र शेष रहने पर उतार लें। इस तेल के प्रयोग से बाल झड़ना बन्द होता है, जूएँ शीघ्र नष्ट होती हैं। बाल शीघ्र बढ़ते हैं, मुलायम तथा काले रहते हैं।

११. तिल

परिचय : १. इसे तिल (संस्कृत), तिल (हिन्दी), तिल (बंगाली), तीळ (मराठी), तल (गुजराती), एल्लु (तमिल), गुब्बलु (तेलुगु), सिमसिम (अरबी) तथा सिसेमम इण्डिकम (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा १-२ फुट ऊँचा और मुलायम रेशों से युक्त होता है। पत्ते ३-५ इञ्च लम्बे, छोटे-बड़े कई आकार के होते हैं। फूल मुलायम, रोगयुक्त, नीलापन लिये कई रंगों के होते हैं। बीज छोटे और उसी रंग के होते हैं।

३. यह समस्त भारत में पाया जाता है। इसकी खेती भी की जाती है।

४. बीजों के रंग-भेद से उसके निम्नलिखित तीन प्रकार मिलते हैं : (क) श्वेत तिल (इनसे तेल अधिक निकलता है।) (ख) रक्त तिल

(रामतिल, फूल चित्र-विचित्र)। (ग) कृष्ण तिल (औषधि के लिए श्रेष्ठ)।

रासायनिक संघटन : इसके बीजों में स्थिर तैल ५०-६० प्रतिशत, मांसतत्त्व २२ प्रतिशत, वेजिटेबल तत्त्व १८ प्रतिशत, म्युसिलेज ४ प्रतिशत, काष्ठभाग ४ प्रतिशत तथा एश (भस्म) ४.८ प्रतिशत होते हैं। बीजों से प्राप्त होनेवाले तेल में पतला चिकना भाग ७० प्रतिशत, गाढ़ा चिकना भाग, सिसेमिन तथा सिसेमाल रहते हैं।

गुण : यह स्वाद में मीठा, चरपरा, कड़ुवा, पचने पर कटु तथा गर्म, रूखा और हल्का है। इसका मुख्य प्रभाव त्वचा-ज्ञानेन्द्रिय पर कुष्ठघ्न (कुष्ठ आदि चर्मविकार-नाशक) रूप में पड़ता है। यह कृमिनाशक, विषहर, केशों के लिए लाभकर, हृदय-उत्तेजक, कफघ्न, शोथहर तथा कटु पौष्टिक है।

प्रयोग : १. अर्श : इसे पीसकर बवासीर के मस्सों पर गर्म करके बाँधें और मक्खन के साथ मिलाकर खाने को दें।

२. वातरोग : अदित, वातशूल, आमवात आदि में इसका लेप करें। तिल के तेल की मालिश करने से शरीर की रूक्षता भी मिट जाती है।

३. पौष्टिक : यह शरीर के लिए अत्यन्त पौष्टिक है। अतः कई प्रकार के पाकों में इसका उपयोग किया जाता है।

१२. निर्गुण्डी

परिचय : १. इसे निर्गुण्डी (संस्कृत), सम्हालू (हिन्दी), तिशिन्दा (बंगाली), निगड (मराठी), नगद (गुजराती), नौची (तमिल), तेल्लावाविली (तेलुगु), अस्लक (अरबी) तथा वाइटेक्स निगण्डो (लैटिन) कहते हैं।

२. यह झाड़ीदार पौधा ८-१० फुट ऊँचा होता है। पत्ते अरहर के

पत्तों के समान, एक डंठल पर तीन पत्रक (पत्र की पँखुड़ी), नीचे की सतह पर सफेदी लिये, कभी कटे, तो कभी बिना कटे, १-५ इञ्च लम्बे होते हैं । फूल छोटे, गुच्छेदार, नीलापन लिये तथा फल छोटे और पकने पर काले हो जाते हैं ।

३. यह भारत में, विशेषतः बगीचों तथा पर्वतीय स्थानों में मिलती है । यह सर्वसुलभ है ।

४. इसके दो भेद हैं : (क) निर्गुण्डी (नीचे फूलवाली) तथा (ख) सिन्दुवार (सफेद फूलवाली) । सिन्दुवार (सम्हालू) का पौधा बड़ा होता है ।

रासायनिक संघटन : इसके पत्तों में सुगन्धित उड़नशील तेल और राल होती है । फल में रेजिन एसिड, मैलिक एसिड एल्केलायड तथा रंजकद्रव्य (कलरिंग मैटर) पाये जाते हैं ।

गुण : यह रस में कड़वी, चरपरी, पचने पर कड़वी तथा गुण में हल्की, रुक्ष है । नाड़ी-संस्थान पर इसका मुख्य प्रभाव पड़ता है । यह शोथहर, व्रण (घाव) की शोधक और भरनेवाली, केशों के लिए लाभकर, कीटाणुनाशक (एण्टीबायोटिक), कफहर, मूत्रजनक, आर्तवजनक, त्वचा के लिए लाभकर, बल्य, रसायन तथा दृष्टि-शक्तिवर्धक है ।

प्रयोग : **१. सन्धिशोथ** : इसके पत्तों को कपड़े में रखकर ऊपर से मिट्टी लपेटकर अग्नि में पका लें । जब उबल जाय तो निकाल, पीसकर लेप बना लें । सिरशूल, संधिशोथ आमवात और अंडकोष-शोथ में यह लेप लगाने पर लाभ होता है । फेफड़ों की सूजन या फुफ्फुसावरण (प्लूरा) में शोथ होने पर भी उपर्युक्त विधि से इसका उपयोग कर सकते हैं ।

२. पेड़ू की सूजन : प्रसूति के बाद ज्वर में निर्गुण्डी का स्वरस पिलायें या पत्तों का शाक खिलायें । इसकी पिट्ठी गर्भाशय (पेड़ू) पर बाँधने से

वहाँ की सूजन दूर होकर संकोचन होता है। दूषित रक्त निकलकर गर्भाशय पूर्वस्थिति में आ जाता है।

३. **स्नायुक** : राजस्थान, मालवा आदि में होनेवाले स्नायुक (नास या नहरुआ) नामक फोड़े में यह बहुत लाभ करती है। रोगी को निर्गुण्डी का स्वरस पीने के लिए दिया जाय और उसीकी पिट्ठी बनाकर फोड़े की जगह पर लेप किया जाय।

सावधानी : पित्त (गर्म) प्रकृतिवाले को इसका विशेष सेवन न कराया जाय।

१३. नीम

परिचय : १. इसे निम्ब (संस्कृत), नीम (हिन्दी), निम (बंगाली) कडूलिंब (मराठी), लीमड़ो (गुजराती), बेंबु (तमिल), बेया (तेलुगु), आजाद दरख्त (अरबी) तथा मेलिया एजाडिरेक्टा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष ४०-५० फुट ऊँचा, अनेक शाखा-प्रशाखाओं से युक्त और सघन होता है। तने की लकड़ी सरल होती है। छाल काली, मोटी और खुरदरी होती है। पत्ते छोटी टहनियों के अन्त में लम्बी सींकों पर नुकीले, कंगूरेदार, ३-५ अंगुल लम्बे व १-१॥ अंगुल चौड़े होते हैं। नये पत्ते निकलने के साथ छोटे-छोटे, पीले-सफेद रंग के फूल आकर लद जाते हैं (बौर, निम्बमंजरी। इसके फल खिरनी के आकार के छोटे, हरे रंग के तथा पकने पर पीले होते हैं। फल में एक बीज होता है।

३. यह भारत में सर्वत्र पाया जाता है।

रासायनिक संगठन : नीम की छाल में कड़ुवा, रालमय सत्त्व, मार्गोसीन उड़नशील तेल, गोंद, श्वेतसार, शर्करा तथा टेनिन होते हैं। पत्तों में कड़ुवा पदार्थ कम होता है। बीज में मार्गोसा आइल ४० प्रतिशत

गन्धक के अंश से युक्त रहता है। मद्य (ताड़ी) में कड़ुवा पदार्थ ६० प्रतिशत होता है। नीम के सब अंगों से तेल अधिक कार्यकारी होता है।

गुण : यह स्वाद में कड़ुवा, कसैला, पचने पर कटु तथा हल्का होता है। इसका मुख्यतः त्वचा-ज्ञानेन्द्रिय पर कण्डूघ्न (त्वचा-रोगहर) प्रभाव पड़ता है। यह कीटाणुनाशक, शोथहर, उदर-कृमिहर, व्रण-रोपण (घाव भरनेवाला), पीड़ा-शामक, रुचिकर, रक्तशोधक, कफहर, मूत्र-विकार-नाशक, गर्भाशय-उत्तेजक, दाह-प्रशामक, ज्वरघ्न, नेत्र के लिए हितकारक तथा बलकारक होता है।

प्रयोग : १. विषमज्वर : नीम की पत्ती की सींकें २१ और काली मिर्च २१ नग लेकर उन्हें ६ तोला पानी में पीस-छानकर कुछ गर्म करके पिलाने से दो-तीन दिनों में विषमज्वर उतर जाता है।

२. वमन : ज्वर में वमन होता हो, तो नीम की लकड़ी जलाकर पानी में बुझाकर वही पानी पिलाइये। इससे कफ की कै रुक जाती है।

३. दाह : ज्वर में दाह हो तो नीम के पत्ते पीसकर शहद मिला पानी में घोलकर पिलायें। इससे ज्वरदाह कम हो जाता और वमन भी रुक जाता है।

४. मसूरिका : नीम के मुलायम पत्ते और काली मिर्च सम परिमाण में पीसकर चने के बराबर गोली बना लें। चेचक के दिनों में प्रातः १ गोली पानी के साथ लेने पर चेचक नहीं निकलती। बराबर दो सप्ताह के सेवन से फोड़ा-फुन्सी भी नहीं निकलते।

५. कामला : निम्ब की छाल के रस में शहद मिलाकर सुबह सेवन करने से कामला में आराम होता है।

६. वातरक्त : निम्ब-पत्र और पटोल-पत्र का क्वाथ शहद मिलाकर पीने से वातरक्त (गाउट) में आराम होता है।

७. **कृमिरोग** : निम्ब-पत्र का रस मधु के साथ पीने से उदरस्थ कृमियों का नाश होता है।

८. **शीतपित्त** : निम्ब-पत्र को घी में भूनकर आँवला मिलाकर खाने से शीतपित्त, फोड़े, घाव, अम्लपित्त और रक्तविकार में निश्चित लाभ होता है।

९. **दन्तरोग** : नीम की जड़ की छाल का काढ़ा लेने से दन्तरोग नहीं होता। पायोरिया में यह विशेष लाभकर है।

१०. **खालित्य-पालित्य** : निम्ब-बीजों के तेल का १ मास तक नस्य लेने और केवल दूध का सेवन करने से बाल काले होते एवं गिरे बाल उग आते हैं।

११. **विष-प्रतीकार** : निम्ब-फलों की गिरी को गर्म जल के साथ देने से विष का असर तुरन्त मिट जाता है।

१२. **अर्श** : १०-१२ निम्ब-फलों की गिरी पीसकर दही के साथ लें, पहले गिरी खाकर दही खायें या गिरी को गुड़ में मिला गोली बनाकर खा लें। इससे दो दिनों में बवासीर में रक्त का आना बन्द हो जाता है। यह प्रयोग शतशः अनुभूत है।

१३. **बाल-ज्वर** : निम्ब के सूखे पत्रों के साथ घी मिलाकर धूप देने से बच्चों का ज्वर छूट जाता है।

१४. **कुष्ठ** : निम्ब के पत्र पीसकर जल के साथ लगातार ६ मास लेने से सब प्रकार के कुष्ठ दूर हो जाते हैं। इसके साथ घी का सेवन अवश्य करें।

१५. **योनि-पिच्छलता** : गाढ़े स्राव से योनि गीली रहती हो तो निम्ब-पत्र उबालकर उस पानी से धोयें (डूसिंग करें)। फिर निम्ब-छाल को अग्नि पर जलाकर उसका धुआँ दें। इससे योनि की पिच्छलता दूर होकर बदबू मिटती और वह कड़ी हो जाती है।

१६. योनिशूल : नीम के बीजों को भिगोकर तथा पीसकर पोटली बना योनि पर रखने से योनि-शूल मिट जाता है।

१७. शोधन : जब फोड़ा पक जाय तथा मुँह छोटा हो, तब नीम के पत्तों को पीसकर पुल्टिस बाँधने से शोधन हो जाता है।

१४ प्याज

परिचय : १. इसे पलाण्डु (संस्कृत), प्याज (हिन्दी), कांदा (मराठी), डुंगली (गुजराती), वेंगायम (तमिल), नीरउली (तेलुगु), वसल (अरबी) तथा एलियम सिपा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा ३ फुट तक ऊँचा होता है। पत्ते खड़े नली की तरह, गोल और मोटे होते हैं। पत्तों के बीच हरे रंग का लम्बा डण्ठल निकलता है। उसके ऊपरी भाग में गुच्छे में सफेद सुहावने लट्टू की तरह फूल लगते हैं। बीज काले, तिकोने होते हैं, जड़ से कन्द निकलता है। यही प्याज है।

३. यह भारत में सब जगह मिलता है। प्रायः सभी प्रान्तों में इसकी खेती होती है।

४. यह एक प्रसिद्ध कन्द है। इसे भोजन में कई प्रकार से काम में लाया जाता है। प्याज सफेद तथा लाल दो तरह का होता है।

रासायनिक संघटन : इसमें सिलापिक्रीन, सिलमिरिन, सिलीनाइन ये तीन कार्यकारी तत्त्व होते हैं। सिनिस्ट्रीन, कड़ुवा, तेज गन्धवाला उड़नशील तेज, स्टार्च, कैल्शियम साइट्रेट, ३ प्रतिशत क्षार आदि मिलते हैं।

गुण : यह स्वाद में मीठा, चरपरा, पचने पर मीठा तथा गुण में भारी, चिकना और गर्म है। नाड़ी-संस्थान पर इसका मुख्य प्रभाव पड़ता है। यह पीड़ाहर, मनोदोष-वर्धक, रुचिवर्धक, यकृत-उत्तेजक, रक्त रोकनेवाला, कफ निकालनेवाला, मूत्रजनक, शुक्रजनक, रसायन, चर्मरोगहर है।

प्रयोग : **१ मूर्च्छा** : हिस्टीरिया (योषापस्मार), नाड़ीशूल, आक्षेप, जल से भय होना (जलत्रास) में प्याज को घी में भूनकर आवश्यकतानुसार देना चाहिए। इसके रस का नस्य देने से मूर्च्छा दूर होकर तुरन्त होश आता है।

२. नाड़ीशूल : नाड़ीशूल : और फोड़ की सूजन पर प्याज पीस तेल में भूनकर बाँधना चाहिए।

३. मुँहासा, झाँई : मुख पर मुँहासे, झाँई, काले दाग पड़ने पर इसके स्वरस का लेप करें। इसके बीजों को दूध में पीसकर लेप करने से मुख पर सुन्दरता आती है और सिर के बाल नहीं झड़ते।

४. हैजा : बच्चों को दस्त या हैजा हो जाने पर प्याज का रस ३ माशा से १ तोला तक चूने के पानी के साथ सेवन कराने से तुरन्त आराम होता है।

५. खाँसी : कफ की खाँसी में प्याज का रस शहद के साथ देने से कफ (बलगम) आसानी से निकलता है।

६. प्रमेह : ६ माशे से १ तोले तक प्याज का रस शहद के साथ सुबह सेवन करने से प्रमेह और वीर्य-सम्बन्धी रोग दूर हो जाता है।

७. मासिकधर्म : स्त्रियों को मासिकधर्म ठीक न होने या कष्ट से होने पर प्याज की सब्जी, मसाले मिलाकर खिलानी चाहिए। प्याज को पकाकर उसके ५ तोला रस में पुराना गुड़ १ तोला मिलाकर लेने से भी मासिकधर्म साफ होता है।

८. मोतियाबिन्द : नेत्रों में वेदना या मोतियाबिन्द हो तो प्याज का रस और मधु समान तथा भीमसेनी कपूर चौथाई भाग मिलाकर रात्रि को आँख में लगाने से लाभ होता है। मोतियाबिन्द शीघ्र नहीं उतरता।

९. कर्णशूल : प्याज के स्वरस को गर्म करके कान में डालने से कर्णशूल शान्त हो जाता है।

१०. **नकसीर :** नाक से खून आता हो तो प्याज का नस्य सूँघने से बन्द हो जाता है।

११. **दश :** प्याज पर चूना (कलई) लगाकर मस्से पर रगड़ने से वह तुरन्त जलकर निकल जाता है।

१२. **दंश :** बन्दर, कुत्ता या कछुआ काट ले तो कच्चे प्याज को बाँध देने से जलन शान्त होकर आराम मिलता है।

१३. **फोड़ा :** फोड़े पर प्याज पीस कोयला मिलाकर पुल्टिस बाँधें। इससे फोड़ा शीघ्र फूटकर घाव भी भर जाता है।

सावधानी : उष्ण प्रकृतिवाले को भोजन में प्याज का प्रयोग अधिक नहीं करना चाहिए।

१५. बच

परिचय : १. इसे बचा (संस्कृत), बच (हिन्दी), बच (बंगाली), वेखंड (मराठी), बज (गुजराती), बड़ज (तेलुगु), वशंनु (तमिल), बिज (अरबी) तथा एकोरस केलेपस (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा ३–५ फुट ऊँचा, सदा हरा रहनेवाला और गन्धयुक्त होता है। अधिकतर जलीय स्थानों में पाया जाता है। पत्ते चिकने, हरे-हरे, २ फुट लम्बे, लगभग आधा इञ्च चौड़े, ईख से मिलते-जुलते, नुकीले, बीच में मोटे और चिकने होते हैं। फूल पीलापन लिये सफेद तथा फल मांसल और तिकोने होते हैं। इसकी जड़ कन्द अदरक की तरह फैलनेवाली, तेज गन्धयुक्त रवेदार, शाखा-प्रशाखायुक्त, खुरदरी और ललाई लिये होती है।

३. यह भारत, बर्मा, असम, मणिपुर के जलीय स्थानों में अधिक होता है।

४. बचा चार जातियों की होती है :

(क) बचा (घुड़बचा, पूर्व-वर्णित), (ख) पारसिक बचा (बाल-मजारपोश), (ग) मलय बचा (कुलिजन) तथा (घ) द्वीपान्तर बचा (चोपचीनी) ।

रासायनिक संघटन : इसकी जड़ की छाल में उड़नशील तेल (वोले-रिल आइल), एकोरीन, मूजीनोल, एसारोन, कैपीन-क्षारतत्त्व टैनिन, श्वेतसार पाये जाते हैं ।

गुण : यह रस में कड़वी, चरपरी, पचने में हल्की तथा गुण में तीक्ष्ण होती है । इसका मुख्य प्रभाव वातनाड़ी-संस्थान पर संस्थापन (चेतना लानेवाला) रूप में होता है । यह वेदनास्थापन, मेध्य (मस्तिष्क को बलदायक), अग्निदीपक, वमन लानेवाली, हृदय-उतेजक, मूत्रजनक, गर्भाशय-संकोचक तथा कण्ठ को ठीक करनेवाली (कफनाशक) है ।

प्रयोग : **१ स्मरणशक्तिवर्धन** : १-२ माशा बचा का चूर्ण पानी, दूध या घृत के साथ सेवन करने से मनुष्य की बुद्धि और स्मरणशक्ति अत्यन्त बढ़ जाती है ।

२. अपस्मार : एक मास तक १ माशा बचा का चूर्ण मधु से और भोजन में केवल दूध और चावल लें तो पुराना अपस्मार (मृगी) दूर हो जाता है ।

३. वाणी-दोष : १–४ रत्ती बचा का चूर्ण मधु के साथ नित्य सेवन करने से जो बच्चे बोलते नहीं अथवा तुतलाते हैं, उनकी वाणी शुद्ध होती है ।

४. अम्लपित्त : बचा के चूर्ण को गुड़ या मधु में मिलाकर सेवन करने से अम्लपित्तजन्य शूल, खट्टी डकारें आना दूर हो जाता है ।

५. मूषक-विष : बचा का चूर्ण चावल के पानी के साथ प्रातः

पीने और पथ्य से रहने पर तीन दिनों से एक सप्ताह तक में मूषक-विष (चूहे का विष) उतर जाता है।

६. अर्श : बचा का चूर्ण तेल में मिलाकर पोटली बनाकर बवासीर के मस्सों का सेंक करने से लाभ होता है।

७. अन्त्रवृद्धि : बचा का चूर्ण और सरसों की खली दोनों मिलाकर बाँधने से अन्त्रवृद्धि रुक जाती है।

८. अन्य उपयोग : निम्बपत्र को एक सेर पानी में पका उसके साथ १ तोला बचा का चूर्ण सेवन करने से कफजन्य हृदयशूल दूर हो जाता है। इसे ही लवण के साथ लेने से आमजन्य शूल मिट जाता है। बचा के चूर्ण की धूनी देने से घर में मच्छर पैदा नहीं होते और सर्प भी घर में नहीं आते हैं।

१६. बाकुची

परिचय : १. इसे बाकुची (संस्कृत), बावची (हिन्दी), हावुच (बंगाली), बावची (मराठी), बावची (गुजराती), कर्पोकरिशी (तमिल), भावंचि (तेलुगु) तथा सोरेलिया कौरिलीफोलिया (लैटिन) कहते हैं।

२. इसके पौधे ४ फुट ऊँचे होते हैं। इसका तना सरल तथा शाखाएँ मजबूत होती हैं। पत्ते १-३ इञ्च लम्बे कुछ गोलाकार और किनारे पर दन्तुर होते हैं। फूल पीलापन या नीलापनयुक्त, १०-३० की संख्या में, लम्बे डण्ठल पर लगे रहते हैं। फल काले रंग के गुच्छों में होते हैं। बीज काले रंग के छोटे, कोमल, सफेद, भीनी गन्धवाले होते हैं।

३. यह प्रायः समस्त भारत में कंकरीली भूमि में, विशेषतः असम और उत्तर प्रदेश में पायी जाती है।

रासायनिक संघटन : इसमें एक पीलापनयुक्त उड़नशील तेल १०-१५

प्रतिशत, स्थिर तैल विशेष प्रकार का राल की तरह का पदार्थ, क्षार, एल्व्युमिन, शर्करा, मैंगनीज तथा वर्मोनिन नामक क्षार-तत्त्व पाये जाते हैं।

गुण : यह स्वाद में चटपटी, कड़वी, पचने पर कटु तथा हल्की, रुक्ष है। इसका मुख्य प्रभाव त्वचा-ज्ञानेन्द्रिय पर कुष्ठघ्न रूप में पड़ता है। यह केश्य (बालों को लाभकर), उदरकृमि-नाशक, कफहर, उत्तेजक, यकृत-उत्तेजक तथा कटु-पौष्टिक है।

प्रयोग : १. **प्रवाहिका** : प्रवाहिका (डिसेण्टरी) में बाकुची के पत्तों को शाक घी में खूब भूनकर दही और अनार का रस डालकर लेने से लाभ होता है।

२. **श्वेत-कुष्ठ** : शुद्ध बाकुची बीज का चूर्ण १ भाग और तिल २ भाग मिलाकर एक वर्ष खाने से श्वेत-कुष्ठ दूर हो जाता है। ३ माशा बाकुची चूर्ण आँवला और खदिर क्वाथ के साथ देने से श्वेत-कुष्ठ में अत्यन्त लाभ होता है।

३. **फोड़ा** : फोड़े से रक्त निकल रहा हो तो बाकुची के पत्ते पीसकर बाँध देने से भी लाभ होता है।

१७. ब्राह्मी

परिचय : १. इसे ब्राह्मी (संस्कृत), बिरमी या ब्राह्मीबूटी (हिन्दी), ब्राह्मीशाक (बंगाली), ब्रह्ममण्डूकी (मराठी), विद्याब्राह्मी (गुजराती) तथा हर्पेस्टिस मोनिअरा (लैटिन) कहते हैं।

२. भूमि पर फैलनेवाला यह छोटा पौधा पानी के निकट बरसात में अधिक होता है। पत्ते कुछ गुर्दे की आकृति के, कंगूरेदार, आधे से ढाई इंच चौड़े, फूल छोटे नीलापन लिये सफेद या ललाई-युक्त तथा फल छोटे-छोटे कई साल तक लगते हैं। पौधों की गाँठों से शोरियाँ निकलकर जमीन में घुस जाती हैं। जड़ पतले धागे की तरह होती है।

३. यह भारत में पहाड़ी प्रदेशों की सूखी, मैदानी तथा जल के समीपवाली जमीन में अधिक पैदा होती है।

४. ब्राह्मी के स्थान पर उसके समान आकृतिवाली दूसरी वनस्पति 'मण्डूकपर्णी' का भी आजकल प्रयोग किया जाता है।

रासायनिक संघटन : इसमें ब्राह्मी नामक तत्त्व (एल्केलायड) होता है। पत्तियों में जल ७८ प्रतिशत और कुछ उड़नशील तेल होता है, जो सूखने पर उड़ जाता है। सूखी पत्तियों में राल, टेनिन, एल्ब्यूमिन साल्ट, निर्यास, शर्करा, वसामय सुगन्धद्रव्ययुक्त भस्म (एश) १२ प्रतिशत होती है।

गुण : यह स्वाद में तिक्त (कड़वी) तथा कषाय, पचने पर मधुर तथा गुण में हल्की और शीतल होती है।

प्रयोग : विभिन्न रोगों पर : इसका मुख्य प्रभाव वातनाड़ी-संस्थान (नर्वस-सिस्टम) पर पड़ता है। ब्राह्मी मुख्यतः मेध्य (मस्तिष्क) को बलदायक है। बौद्धिक कार्य करनेवाले विशेषतः विद्यार्थियों के लिए यह सेवनीय है। सम्पूर्ण पौधा काम आता है। स्वरस (ताजा रस) १ से २ तोला, मूल चूर्ण ३ से १२ रत्ती और पंचांग ३ से ६ माशा लेना चाहिए।

१८. भाँग

परिचय : १. इसे विजया (संस्कृत), भाँग (हिन्दी), भाँग (बंगाली), भाँग (मराठी), भाँग (गुजराती), बिन्नव (अरबी) तथा कैलिबिस सेटाइवा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका एक वर्ष के लिए निकलनेवाला पौधा ३-८ फुट ऊँचा और सीधा होता है। शाखाएँ पतली तथा हरी रहती हैं। पत्ते कटे हुए ३–७ तक, पत्र-खण्ड नीम के पत्ते के समान बन जाते हैं। पूरा पत्ता गोलाकार बन जाता है। फूल सफेदी लिये गुच्छेदार, हरे तथा फल बाजरे के समान छोटे-छोटे होते हैं।

३. यह भारत में प्रायः सर्वत्र, विशेषतः बिहार, बंगाल, उत्तर प्रदेश और पंजाब में होती है। इसकी खेती भी की जाती है।

४. पुरुष-जाति के इस पौधे की कोमल टहनियाँ और पत्र 'भाँग' कहे जाते हैं। स्त्री-जाति के पौधे के फूलों की मंजरी एक लसदार अंश से जटा की तरह बन जाती है। यही 'गाँजा' (गंजा : कैनेबिस इण्डिका) है। इसी पौधे की शाखाओं आदि से विशेष विधि से राल के समान जमा पदार्थ एकत्र किया जाता है, यही 'चरस' कहलाता है। यह प्रसिद्ध नशीला द्रव्य है।

रासायनिक संगठन : इसमें उड़नशील तेल, राल, शोरा (पोटेशियम नाइट्रेट), कैनेबिनौन, टिटेनो कैनाबीन और गोंद (गम) पाये जाते हैं।

गुण : यह रुचि में कड़वी, पचने पर कड़वी तथा गुणों में तीक्ष्ण, हल्की और रूखी होती है। इसका मुख्य प्रभाव वातनाड़ी-संस्थान पर मदकारी होता है। यह भूख बढ़ानेवाली, वेदना शान्त करनेवाली, नशे की पहली अवस्था में हृदय-उत्तेजक, मूत्र लानेवाली, रक्तस्राव रोकनेवाली, शुक्र-स्तम्भ तथा धातुओं की शोषक है।

प्रयोग : **१. दस्त** : भाँग १ तोला, जीरा (भुना) २ तोला, सोंठ २ तोला, छोटी हरड़ १ तोला, हींग (भुनी) ६ माशा, काला नमक २ तोला और सेंधा नमक १ तोला पीसकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण को बड़ों को एक माशा और बच्चों को २–४ रत्ती दें। इससे पहले दस्त, पेचिश, भूख का लगना, अन्न का न पचना आदि दूर होकर दस्त साफ होता है।

२. ज्वर में प्रलाप : तेज ज्वर में रोगी बहुत बड़बड़ाता हो, अनिद्रा में हो तो भाँग को दूध में पका रबड़ी जैसा गाढ़ा होने पर सिर और पैरों के तलवे पर बाँध दें। रोगी को नींद आयेगी और प्रलाप बन्द हो जायगा।

३. **मासिकधर्म :** स्त्रियों को भाँग देने से मासिकधर्म खुलकर होने लगता है।

४ **आक्षेप :** किसी रोगी को दौरे पड़ते हैं, जिसमें आक्षेप (झटके) लगते हैं, जैसे टिटनेस आदि—तो भाँग की सिगरेट बनाकर पिलाने या नाक से धुआँ लेने पर आराम होता है।

५. **बवासीर :** खूनी या बादी बवासीर के मस्सों पर इसे पीस टिकिया बनाकर बाँधने या धुआँ देने से दर्द बन्द हो जाता है।

सावधानी : यह मादक द्रव्य है। अधिक मात्रा में सेवन करना नशा है। अतः सावधानी से प्रयोग करना चाहिए।

१२. भृङ्गराज

परिचय : १. इसे भृङ्गराज (संस्कृत), भांगरा (हिन्दी), भीमराज (बंगाली), माका (मराठी), भांगरो (गुजराती), काइकेशी (तमिल), गलगरा (तेलुगु), कदीमुर्लावत (अरबी) तथा बैडिलिया कैलेण्डुलेसिया (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा ८–१० अंगुल ऊँचा प्रायः जमीन पर फैला रहता है, जो वर्षा में अधिक तथा पानी के किनारे पर तो सदैव मिलता है। इसकी शाखाएँ हरी, काली तथा जमीन पर ऊँची उठी रहती हैं। पत्ते ३-४ इंच लम्बे, अनीदार, विविध आकारवाले, अरहर के पत्तों से कुछ मिलते-जुलते और रेशेदार होते हैं। फूल सफेद, पीले रंग की छोटी घुण्डीदार होते हैं। बीज लम्बे, छोट, कालीजीरी की तरह होते हैं। एक फूल में लगभग २० बीज रहते हैं।

३. यह प्रायः भारत के सभी प्रदेशों में जलीय स्थानों के निकट पाया जाता है।

४. फूलों के भेदों से इसकी तीन जातियाँ होती हैं : (क) पीत

भृङ्गराज (पीले फूल का, ऊपर-वर्णित, अधिकतर मिलनेवाला), (ख) श्वेत भृङ्गराज (सफेद फूलोंवाला, केशराज) तथा (ग) नील भृङ्गराज (दुर्लभ) ।

रासायनिक संगठन : इसमें काफी मात्रा में गोंद, राल, सुगन्धित तिक्त द्रव्य तथा क्षारीय तत्त्व एक्लिप्टिन होते हैं ।

गुण : यह स्वाद में चरपरा, कड़वा, पचने पर कटु तथा रूक्ष, हल्का और गर्म होता है। इसका मुख्य प्रभाव त्वचा-ज्ञानेन्द्रिय पर केशों (बालों) के हितकारक रूप में पड़ता है। यह त्वचा, दन्त और नेत्र के लिए लाभकर, शोथहर, कृमिनाशक, घाव भरनेवाला, रक्तवर्धक तथा रसायन है ।

प्रयोग : १ **श्वास-कास** : १० तोला भृङ्गराज का रस २॥ तोला तेल में पकाकर सेवन करने से श्वास-कास दूर हो जाता है ।

२. **अम्लपित्त** : १ तोला भृङ्गराज के रस में ६ माशा हरड़ का चूर्ण और १ तोला पुराना गुड़ मिलाकर खाने से जलन तथा वमन दूर होते हैं ।

३. **श्वेतकुष्ठ** : भृङ्गराज को तेल में भूनकर खायें। ऊपर से लोहे के पात्र में दूध पकाकर पीयें और इसीका स्वरस दागों पर लगायें तो श्वेतकुष्ठ मिट जाता है ।

४. **बाल काले करना** : भृङ्गराज-पुष्प और गुड़हल-पुष्प को भैंस के दूध में पीसकर लोहे के पात्र में बन्द कर गाड़ दें। एक सप्ताह पश्चात् निकाल रात्रि में उसे सिर में लगाकर सोया करें। कुछ ही दिनों में बाल काले हो जायेंगे ।

५. **केशों का गिरना** : २ सेर भृङ्गराज का स्वरस, ४ तोला मुलेठी और २ सेर दूध को ६० तोला तेल में पकायें। केवल तेल शेष रहने पर

छानकर नित्य प्रातः नस्य लें तो बालों का झड़ना बन्द होकर वे काले भी होने लगते हैं।

६. **रसायन** : नित्य १ तोला भृङ्गराज का स्वरस सेवन करें। भोजन में केवल दूध लें। इस प्रकार एक मास तक करने से मनुष्य नवजीवन प्राप्त करता और आयु बढ़ जाती है।

७. **फोड़ा** : भृङ्गराज के पत्तों को पीस तेल में पकाकर छान लें। उसमें थोड़ा मोम डाल मलहम बना लें। इसे फोड़ा-फुन्सी पर लगाने से फोड़ा भर जाबा है तथा सड़न नहीं होती।

८. **गर्भपात** : गर्भवती स्त्री को १ तोला भृङ्गराज का स्वरस १ तोला गाय के दूध में मिलाकर पिलाने से गर्भपात का भय मिट जाता है।

२०. मालकांगनी

परिचय : १. इसे ज्योतिष्मती (संस्कृत), मालकांगनी (हिन्दी), मालकागोणी (मराठी), मालकांगणी (गुजराती), बालुलवे (तमिल), तैलान (अरबी) तथा सिलेक्ट्रस पैनिक्यूलेटा (लैटिन) कहते हैं।

२. यह ऊपर चढ़नेवाली लता है। इसके पत्ते अण्डाकार, नुकीले, पुष्प नीलापन लिये पीले, फल मटर के समान गोल और पीले होते हैं। फल के तीन खण्डों में १-१ बीज होता है।

३, यह समस्त भारत में, विशेषतः पंजाब, काश्मीर तथा अन्य पर्वतीय प्रदेशों में पायी जाती है।

रासायनिक संघटन : इसके बीज में ३० प्रतिशत गाढ़ा, लाल, पीला, कड़वा और गन्धयुक्त तेल, कषाय द्रव्य तथा क्षार ५ प्रतिशत की मात्रा में निकलता है।

गुण : यह कटु, तिक्त, तीक्ष्ण, स्निग्ध तथा उष्ण है। इसका नाड़ी-संस्थान पर मेध्य रूप में मुख्य प्रभाव पड़ता है। यह स्मरणशक्ति-वर्धक, मूत्रल, वेदनास्थापक, चर्मरोगहर तथा उत्तेजक है।

प्रयोग १. वायुरोग : औषधि के लिए इसके बीजों का तेल निकाला जाता है। व्यापार की दृष्टि से अधिक बीज लेकर कोल्हू या मशीन से तेल निकाल लेते हैं। इसके तेल की मालिश से सन्धियों की वेदना, पक्षाघात (लकवा), अर्दित, गृध्रसी (साइटिका) आर कमर का दर्द दूर हो जाता है।

२. मस्तिष्क-दौर्बल्य : मस्तिष्क की दुर्बलता या दिमाग की सुस्ती में इसके तेल की २ से १० बूँदें गोघृत में मिलाकर दें। इससे स्मरण-शक्ति और मेधा-शक्ति बढ़ती है।

३. मासिक स्राव में कष्ट : जिस स्त्री को मासिक स्राव अल्प अथवा कष्ट से होता हो, उसे १ तोला मालकांगनी के पत्तों का शाक घी में भूनकर दें। इससे मासिक-धर्म खुलकर एवं वेदनारहित होगा।

४. श्वास-खाँसी : इसके बीजों के चूर्ण का नस्य लेने से संचित कफ निकल जाता है। और कफज तथा सर्दी से हुए श्वासकास में लाभ पहुँचता है।

२१. लहसुन

परिचय १. इसे लशुन, रसोन, (संस्कृत), लहसुन (हिन्दी), रशुन (बंगाली), लसूण (मराठी), लसण (गुजराती), वल्लईपांडु (तमिल), तेल्लबुल्लि (तेलुगु), सोम (अरबी) तथा एलियम सेटाइवम (लैटिन) कहते हैं।

२. इसके पौधे बड़े कोमल, पत्तेदार और काण्डवाले होते हैं। पत्ते लम्बे, चिपटे और पतले होते हैं। फूलों का डंठल पत्तों के बीच रहता है। इस पर सफेद फूल गुच्छे में लगते हैं। जड़ से जो कन्द निकलता है, वही लहसुन है। इस कन्द में कुत्ते के नख या जव से बड़े आकार के टुकड़े (जावा या पूतिया) दुर्गन्धयुक्त जुड़े रहते हैं।

३. यह पूरे भारत में होता है। इसकी खेती की जाती है।

४. आहार तथा शाक में लहसुन का प्रयोग बहुत होता है। इसके दो भेद होते हैं : १. रसोन तथा २. महारसोन (कन्द व पत्र : रसोन की अपेक्षा) ।

रासायनिक संघटन : इसमें उड़नशील तैल, पिच्छिल द्रव्य (म्युसिलेज) ३५ प्रतिशत, एल्ब्यूमिन, शर्करा आदि मिलते हैं।

गुण : यह स्वाद में पाँच रसोंवाला है, जिनमें चरपरा और मीठा मुख्य हैं। पचने पर कड़वा, गुण में भारी, तीक्ष्ण और चिकना होता है। वातनाड़ी संस्थान पर इसका मुख्य रूप से प्रभाव पड़ता है। यह शोथहर, उत्तेजक, मस्तिष्क-बल्य, इन्द्रिय-शक्ति-विकासक, शूलहर, अग्निदीपक, यकृत-उत्तेजक, हृदय-उत्तेजक, कफ-दुर्गन्धिनाशक तथा रसायन है।

प्रयोग : **१. मलेरिया** : लहसुन वात-रोगों के लिए परमौषधि है। यह विषमज्वर, मलेरिया, क्षय, पक्षाघात (लकवा), गृध्रसी (साइटिका) और सन्धिशूल में लाभकारक है। मलेरिया में ३–६ माशे लहसुन प्रातः तिल के तेल के साथ सेवन करना चाहिए। वात-प्रकृतिवाले घी के साथ सेवन करें।

२. वातगुल्म-हृदयरोग : वातगुल्म, अफरा और गृध्रसी रोग में लहसुन १ तोला, जल ८ तोला, दूध ८ तोला लेकर सबको पकायें। दूध शेष रहने पर उसका सेवन करें। इसकी मात्रा चौगुनी हो सकती है। उपर्युक्त रोगों के अतिरिक्त हृदयरोग, विषमज्वर और शोथ पर भी यह लाभकारी है।

३. मन्दाग्नि : साफ लहसुन ५ तोला और हींग २॥ तोला अदरख के रस में मिलाकर तब तक घोंटते रहें, जब तक मिल न जाय। फिर गोली बनाकर १ तोला प्रातः-सायं सेवन करें तो वात के विकार, पेट का दर्द, मन्दाग्नि, स्त्रियों के मासिक-धर्म की रुकावट निश्चित दूर होती है।

४. **काली खाँसी** : लहसुन की कलियों को जला कोयला कर मिट्टी के बरतन में ढँककर पीस लें। फिर उसीके बराबर काला नमक मिला लें। इसे ३ रत्ती शहद या मलाई में चटाने से काली खाँसी में निश्चित लाभ होता है।

५. **नेत्ररोग** : रतौंधी (नाइट ब्लाइंडनेस) में लहसुन के स्वरस की एक-दो बूँदें शाम के समय आँखों में डालने से ३ दिन में आश्चर्यजनक लाभ होता है।

६. **सूजन** : वातरोगों में, चोट और सूजन में लहसुन पीस, आटे में मिलाकर थोड़ा तेल डालकर पका लें। इस पोटली से वहाँ सेंककर बाँध दें तो बहुत लाभ होता है। जलन होने लगे तो हटा दें, अन्यथा छाले पड़ने का भय है।

७. **कर्णशूल** : लहसुन डालकर पकाया तेल सोते समय हल्का गर्म करके कान में डालें तो कर्णशूल में लाभ होता है। इसकी मालिश से किसी भी दर्द या सूजन में लाभ होता है।

सावधानी : गर्म प्रकृतिवाले व्यक्ति एवं ग्रीष्म ऋतु में इसका सेवन न करें।

२२. शंखपुष्पी

परिचय : १. इसे शंखपुष्पी (संस्कृत), शंखाहुली (हिन्दी), डानकुणी (बंगला), साखरवेल (मराठी), शंखावली (गुजराती), शंखपुष्पी (तेलुगु) तथा कन्वाल्वुलस प्लुरिकांलिस (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा बरसात के अन्त में, जाड़े में जमीन पर छत्ते की तरह फैला रहता है। पत्ते छोटे, बिना डंठल के, सफेदी लिये रोयेंदार और फूल शंख की आकृति जैसे सफेद होते हैं। जड़ सुतली या अंगुली के समान, कुछ रेशेदार हरियाली लिये सफेद होती है।

२ रत्ती पीपल छोटी, २ रत्ती चित्रक और ४ रत्ती सेंधा नमक मिलाकर देने से लाभ होता है।

३. **विद्रधि** : अन्दर के फोड़े (विद्रधि) में सहजन की जड़ की छाल खल में पीस छानकर मधु के साथ चटायें। इससे विद्रधि फूट या बैठ जाती है।

४. **उदरकृमि** : शोभांजन का काढ़ा बनाकर मधु के साथ सेवन करने से उदरस्थ कृमि नष्ट हो जाते हैं।

५. **उदरशूल** : शोभांजन के मूल के रस को कालीमिर्च, सज्जी और शहद मिलाकर देने से उदर-शूल में लाभ होता है।

६. **नेत्ररोग** : इसके स्वरस में मधु मिला अंजन की तरह लगाने से नेत्र-रोग में लाभ होता है। पीड़ा होने पर इसके पत्तों का सेंक करें।

७. **शिर:शूल** : इसके फलों का नस्य लेने से ट्यूमर नष्ट होता और सिर का दर्द बन्द हो जाता है।

८. **अचेतनता** : सन्निपात ज्वर में जब रोगी बेहोश हो जाता है तो सहजन के मूल के रस में रास्ना और मरिच मिलाकर नस्य दें। इससे रोगी होश में आ जाता है।

सावधानी : गर्म-प्रकृतिवाले को इसका अधिक सेवन नहीं करना चाहिए।

२४. सर्पगन्धा

परिचय : इसे सर्पगन्धा (संस्कृत), धवल, बरुआ, चाँद-बरुवा (हिन्दी), चाँदर (बंगला), अडकई (मराठी), अमेलपोदी (गुजराती), चिवनमेलपोडी (तमिल) पाटलागन्धि (तेलुगु) तथा राओल्फिया सर्पेण्टिना (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा आधे से तीन फुट तक ऊँचा तथा तने पर सफेद

रंग का होता है। पत्ते ३–७ इञ्च लम्बे, १ से २॥ इञ्च चौड़े, नीचे की ओर हल्का तथा ऊपर की ओर गहरा हरापन लिये, काण्डसन्धि में भाले की तरह ३–४ पत्रकों से युक्त होते हैं। फूल सफेद, गुलाबी या नीलापन लिये लाल रंग के, संख्या में कई, लगभग १ इञ्च लम्बे होते हैं। फल मटर की तरह लाल या नीले होते हैं। इसकी जड़ अंगुली की तरह मोटी, कत्थई-सा रंग लिये होती है। यह तोड़ने पर गोलाकार दिखाई देती है।

३. यह हिमालय के गर्म प्रान्तों में, कहीं कम तो कहीं अधिक, बिहार, बंगाल, कोंकण तथा उत्तर में मिलती है।

रासायनिक संघटन : इसमें एल्केलायड १ प्रतिशत (इससे अनेक क्रियाशील तत्त्व निकाले गये हैं), राल, स्टार्च, गोंद, लवण (कैल्शियम, मैगनीज, फास्फेट आदि युक्त) मिलते हैं।

गुण : यह स्वाद में कड़वी, पचने पर कड़वी तथा गुण में रूक्ष और गर्म होती है। इसका मुख्य प्रभाव वातनाड़ी-संस्थान पर निद्राजनक (ब्लडप्रेशर कम करनेवाली) रूप में पड़ता है। यह पित्तसारक, शूल-शामक, हृदय-अवसादक, शक्तिवर्धक, आर्तवजनक तथा विषनाशक है।

प्रयोग : १. **रक्तभाराधिक्य** : रक्तभाराधिक्य में सर्पगन्धा की जड़ का चूर्ण २–४ रत्ती शीतल जल या मक्खन से देना चाहिए। इससे ब्लड-प्रेशर कम हो जाता है।

२. **अनिद्रा** : अनिद्रा में रात्रि को सोते समय ३–५ रत्ती इसका चूर्ण मक्खन के साथ लेना चाहिए। इससे गाढ़ी नींद आती है।

३. **उन्माद** : उन्माद में सर्पगन्धा के मूल का चूर्ण १–३ माशा गुलाब जल में देना चाहिए। पथ्य में दूध-चावल दें।

४. **हिस्टीरिया** : २–६ रत्ती सर्पगन्धा-मूल का चूर्ण गुलाबजल में देने से हिस्टीरिया में भी लाभ होता है।

सावधानी : इसका प्रयोग बलवान् रोगियों पर करना चाहिए, दुर्बलों पर नहीं; क्योंकि इससे हृदय में अवसाद उत्पन्न होता है।

२५. हरिद्रा

परिचय : १. इसे हरिद्रा (संस्कृत), हल्दी (हिन्दी), हलुद (बंगाली), हलद (मराठी), हल्दर (गुजराती), मंजल (तमिल), पसुपु (तेलुगु) उरुकुस्सफर (अरबी) तथा करकुमा लौंगा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा पाँच फुट तक ऊँचा अदरख की तरह होता है। पत्ते ७ इंच तक चौड़े, १॥ फुट तक लम्बे, नुकीले, आम की तरह गन्धवाले होते हैं। फूल पीलापन लिये हुए, लम्बे डण्ठल पर लगता है। फल लम्बा और गाँठदार होता है! जड़ में छोटे-छोटे कन्द अदरख या घुइया (अरबी) की तरह बन जाते हैं।

३. यह भारत में प्रायः सर्वत्र होती है। पर्वतीय तथा जंगली प्रदेशों की भूमि में अधिक होती है।

४. इसी जाति में दो प्रकार के हरिद्रा-द्रव्य और समाविष्ट हैं : (क) वनहरिद्रा (आमा हल्दी) तथा (ख) आम्रगन्धी हरिद्रा (सफेद हल्दी)।

रासायनिक संघटन : इसमें उड़नशील तैल १ प्रतिशत, राल, कर्कुमीन नामक सत्त्व, पीला रंग द्रव्य, ट्यूमरिक आइल या ट्यूमरोल नामक गाढ़ा, पीला, विशेष-गन्ध-स्वादयुक्त एक तैल मिलता है।

गुण : इसका स्वाद कड़वा, चरपरा होता है। यह पचने पर कटु, रूक्ष तथा हल्की है। इसका मुख्य प्रभाव त्वचा-ज्ञानेन्द्रिय पर कुष्ठघ्न (कोढ़ को नष्ट करनेवाला) रूप में पड़ता है। यह शोथहर, व्रणरोपण-शोधन, पीड़ाहर, रेचक, कृमिनाशक, रक्तवर्धक, शोधक, कफघ्न, विष-

हर, मूत्र-विकार-हर, गर्भाशय, स्त्रीदुग्ध और शुक्र की शोधक तथा कटु-पौष्टिक है।

प्रयोग : १. **श्वास** : हल्दी के टुकड़ों को घी में भूनकर धुआँ लेने से हिचकी बन्द हो जाती और श्वास को भी लाभ होता है। कुछ भूनी और कुछ कच्ची हल्दी २-३ माशा शहद के साथ खाने से निश्चय ही श्वास ठीक होता है।

२. **यकृत-वृद्धि** : घीकुआर के साथ हल्दी खाने से तिल्ली (यकृत-वृद्धि) में लाभ होता है।

३. **बवासीर** : हल्दी का लेप बवासीर, तिल्ली और उदरशोथ में लाभप्रद है।

४. **शीतपित्त** : हल्दी भूनकर गुड़ के साथ खाने से शीत-पित्त और खुजली मिट जाती है।

. **पाण्डु** : तीन माशा दही में हल्दी मिलाकर खाने से पाण्डुरोग मिटता है।

६. **प्रमेह** : हल्दी को आँवले के साथ खाने से प्रमेह और मूत्र का गँदलापन दूर होता है।

७. **गर्भाशय-शोथ** : हल्दी भूनकर गुड़ के साथ देने से गर्भाशय-शोथ एवं दुर्बलता नष्ट होती है तथा मासिक-धर्म ठीक होने लगता है।

८. **प्रदर** : हल्दी का चूर्ण चीनी के साथ देने से प्रदर में लाभ होता है।

९. **लिंग-शर्करा** : लिंग पर बारीक दाने होने पर हल्दी को गुड़ में मिला गर्म पानी के साथ दें। इससे दाने नष्ट हो जाते हैं।

१०. **चेचक** : चेचक में हल्दी इमली या करंडा के रस के साथ देनी चाहिए।

११. **चोट-अस्थिभंग** : हल्दी के गर्म-गर्म लेप से चोट तथा हड्डी टूटने तक में लाभ होता है।

२६. हींग

परिचय : १. इसे हिंगु (संस्कृत), हींग (हिन्दी), हिंग् (बंगला), हिंग (मराठी), हींग (गुजराती), पेरूगायम (तमिल) इङ्गु (तेलुगु), हिल्तीत (अरबी) तथा फेरुला नार्थेक्स (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष छोटा, झाड़ के समान ६–८ फुट तक ऊँचा होता है। पत्ते अनेक भागों में विभक्त, अजमोदा के पत्तों के समान १-२ फुट लम्बे पक्षयुक्त होते हैं। एक डंठल में एक ही पत्ता होता है। फूल गुच्छों में टहनियों के अन्त में तथा फल तिहाई इंच लम्बे और चौथाई इंच चौड़े, अंडाकार होते हैं।

३. हींग भारत में पंजाब तथा कश्मीर में मिलती है। अधिकतर पेशावर, काबुल, फारस तथा अफगानिस्तान आदि में होती है।

४. मुख्यतः हींग दो तरह की है—हीरा हींग (सफेद वृक्ष का निर्यास, हीरे के समान चमकदार) तथा हींगड़ा या हींग (काली जाति का दुर्गन्धित निर्यास)। वर्तमान बाजार में हींग की अनेक शुद्ध-अशुद्ध जातियाँ देखने में आती हैं।

पुराने वृक्ष की जड़ मूल से कुछ छोड़कर तिरछी काट देते हैं, तो कटे भाग पर रस जम जाता है। इसी प्रकार कई बार थोड़ा छोड़कर काटते रहने पर पर्याप्त मात्रा में निर्यास एकत्रित हो जाता है। यही हींग है। चाकू से जड़ की छाल उतारकर भी निर्यास संग्रह किया जाता है। एक वृक्ष से लगभग २ से ६ छटाक तक हींग प्राप्त हो सकती है।

रासायनिक संघटन : इसमें उड़नशील तेल ६–१० प्रतिशत, राल (एसार-सोनोटा एत्रोल) ६५ प्रतिशत, क्षार व लवण ३–४ प्रतिशत, फेरूएलिक एसिड, एसेटिक एसिड, मेलिक एसिड, फॉर्मिक एसिड तथा वेलेरिएनिक एसिड होते हैं।

गुण : हींग रस में चरपरी, पचने पर कड़वी तथा गुण में हल्की, चिकनी और तीक्ष्ण है। यह शूलहर, वायुसारक, कृमिनाशक, हृदय को बलदायक, कफनिःसारक, मूत्रजनक और आर्तवजनक है। इसका मुख्य प्रभाव वातनाड़ी-संस्थान पर होता है।

प्रयोग १. शूल पर : उदर में शूल होने पर हींग को पानी में घोलकर, गर्म कर नाभि तथा आसपास लेप करें। हींग का गर्म-गर्म लेप करने से पसली का दर्द भी दूर हो जाता है। सर्दी से शिरःशूल होने पर हींग के लेप से लाभ होता है। दाँतों में कीड़ा लगने पर हींग दबाने से दर्द दूर हो जाता है।

२. शीतपित्त : शीतपित्त (छपाकी) में हींग को घी में मिलाकर मालिश करने से शीघ्र लाभ होता है।

३. व्रण : काँटा, काँच आदि लगने पर हींग का घोल उस स्थान पर भर देने से कुछ समय बाद वह स्वयं बाहर आ जाता है।

४. हिस्टीरिया : हिस्टीरिया में हींग सुँघाने से होश आ जाता है।

५. उदरकृमि : हींग पानी में घोलकर बस्ति (एनिमा) देने से उदर के कृमि निकल जाते हैं।

६. उदरशूल : उदरशूल, अफारा, डकारों में १ रत्ती हींग भूनकर किसी भी चीज के साथ खाने से लाभ होता है। निम्न रक्तचाप में हींग का सेवन लाभदायक है।

७. ज्वर-प्रलाप : ज्वर में जब सान्निपातिक अवस्था हो, नाड़ी दूषित हो जाय, प्रलाप, भागना, कपड़े फेंकना आदि उपद्रव पाये जायँ तो उस समय कच्ची हींग और कपूर एक-एक रत्ती मिलाकर देने से तुरन्त लाभ होता है।

८. निमोनिया : श्वास आदि में १ रत्ती कच्ची हींग देनी चाहिए।

इससे कफ पतला होकर निकल जाता है। दुर्गन्ध और कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। एक रत्ती कपूर उसमें मिला देने से तुरन्त लाभ होता है।

९. **डिब्बा** : बच्चों के डिब्बा-रोग या पसली चलने पर आधी रत्ती हींग पानी में घोलकर देने से तुरन्त लाभ होता है।

१०. **मासिक-धर्म** : मासिक-धर्म में दर्द या स्राव कम आता हो तो हींग का सेवन बहुत लाभ देता है।

११. **विष खा लेने पर** : हींग पानी में घोलकर पिला दें। इससे वमन होकर विष का असर जाता रहेगा।

१२. **कर्णशूल** : कान के दर्द में हींग का तेल गर्म करके डालना चाहिए।

१३. **ज्वर** : चौथिया, तिजारी ज्वर आने पर हींग को पुराने घी में मिलाकर नस्य दें तो बुखार रुक जाता है।

सावधानी : यकृत-विकारी और उष्ण (गर्म) प्रकृतिवाले को हींग का सेवन सावधानी से कराना चाहिए।

श्वसन-संस्थान प्रभावक वर्ग | २

२७-२८. कटेली : क्षुद्र और बृहती

परिचय : कटेली दो प्रकार की होती है : (१) क्षुद्र यानी छोटी कटेली और (२) बृहती यानी बड़ी कटेली। दोनों के परिचय, गुणादि निम्नलिखित हैं :

छोटी कटेली : १. इसे कण्टकारी क्षुद्रा (संस्कृत), छोटी कटेली

भटकटैया (हिन्दी), कण्टिकारी (बंगला), मुईरिंगणी (मराठी), भोयरिंगणी (गुजराती), कान्दनकांटिरी (तमिल), कूदा (तेलुगु), बांद जान बरीं (अरबी) तथा सोलेनम जेम्थोकार्पम (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा जमीन पर कुछ फैला हुआ, काँटों से भरा होता है। पत्ते ३–८ इंच तक लम्बे, १–२ इंच तक चौड़े, किनारे काफी कटे तथा पत्र में नीचे का भाग तेज काँटों से युक्त होता है। फूल नीले रंग के तथा फल छोटे, गोल कच्ची अवस्था में हरे तथा पकने पर पीले रंग की सफेद रेखाओं सहित होते हैं।

३. यह प्रायः समस्त भारत में होती है। विशेषतः रेतीली भूमि तथा बंगाल, असम, पंजाब, दक्षिण भारत में मिलती है।

४. इसके दो प्रकार होते हैं : (क) नीलपुष्पा कण्टकारी (नीले फूलोंवाली, अधिक प्राप्य) । (ख) श्वेतपुष्पा कण्टकारी (सफेद फूलोंवाली, दुर्लभ)

बड़ी कटेली : १. इसे बृहती (संस्कृत), बड़ी कटेली बनभंटा (हिन्दी), व्याकुड (बंगला), डोरली (मराठी), डमीरिंगणी (गुजराती), पाम्परामल्ली (तमिल) तथा सोलेमन इण्डिकम (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा १–४ फुट ऊँचा, बैंगन की तरह, अनेक शाखा-प्रशाखाओं तथा कुछ टेढ़े काँटों से युक्त होता है। पत्ते ३ से ६ इंच लम्बे, १–४ इञ्च चौड़े बैंगन के पत्तों की तरह, कटे-किनारेदार तथा तीक्ष्ण काँटेवाले होते हैं। फूल बैंगनी रंग के, बैंगन के फूलों की तरह होते हैं। फल कच्ची अवस्था में हरे और सफेद रेखाओं से युक्त तथा पकने पर पीले रंग के होते हैं। यह श्वेतपुष्पा तथा नालपुष्पा दो प्रकार की होती है।

३. यह विशेषतः पंजाब और दक्षिण भारत की पथरीली भूमि में होती है।

रासायनिक संघटन : छोटी कटेली में सोलेनिन नामक एल्केलायड, पोटेशियम क्लोराइड, पोटाशियम नाइट्रेट, लौह तथा कुछ सेन्द्रिय अम्ल तथा फलों में सोलेनकार्पीन तत्त्व पाया जाता है। बड़ी कटेली में सोलेनिडिन नामक एल्केलायड मिलती है।

गुण : यह स्वाद में कड़वी, चरपरी, पचने पर कटु तथा हल्की, रूखी, तीक्ष्ण और गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव श्वसन-संस्थान (रेस्पायरेटरी सिस्टम) पर कफहर रूप में पड़ता है। यह पीड़ाशामक, शोथहर, कृमिनाशक, संज्ञाप्रबोधक, अग्निदीपक, रक्तशोधक, मूत्रजनक, गर्भाशय-संकोचक तथा ज्वरहर है।

प्रयोग : १. **श्वास** : कण्टकारी के १ तोला रस में थोड़ी हींग मिलाकर मधु के साथ देने पर ३ दिनों में श्वास ठीक हो जाता है।

२. **कास** : बच्चे जब खाँसते-खाँसते दूध डाल देते और उनका मुँह लाल हो जाता है, तो कटेली के फूल को केसर मे पीसकर शहद के साथ दें। फूल को जलाकर मधु मिलाकर देने से भी शीघ्र लाभ होता है।

३. **अश्मरी** : दोनों कटेलियों को पीसकर उनका रस मीठे दही के साथ सप्ताहभर सेवन करने से पथरी निकल जाती तथा मूत्र साफ आने लगता है।

४. **इन्द्रलुप्त** : सिर पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ होने पर कण्टकारी का रस शहद में मिलाकर लगायें।

२९. दालचीनी

परिचय : १. इसे त्वक् (संस्कृत), दालचीनी (हिन्दी), दारुचीनी (बंगला), तज (मराठी), तज (गुजराती), कारुया (तमिल), सानलिफु (तेलुगु), दारसीनी (अरबी) तथा सिन्नेमोमम् जिलेनिकम् (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष मध्यम आकार, कत्थईपन और लाली लिये, आधे से एक इञ्च तक मोटी छालवाला होता है। पत्ते आमने-सामने, चर्म की तरह छोटे रोमों से युक्त और ऊपरी भाग पर चमकीले होते हैं। फूल पिलाई लिये कत्थई रंग के होते हैं। फल गहरे बैंगनी रंग के लगभग १ इञ्च लम्बे होते हैं।

३. इसका मुख्य स्थान लंका है। यह दक्षिण भारत तथा हिमालय प्रदेश में भी पायी जाती है।

४. यह तीन प्रकार की होती है : (क) चीनी दालचीनी (चीन, सिंगापुर आदि से आनेवाली)। (ख) सिंहली दालचीनी (लंका की, अधिक मधुर और कम तीक्ष्ण)। (ग) भारतीय दालचीनी (सबसे मोटी और कम तीक्ष्ण)।

रासायनिक संघटन : इसमें एक उड़नशील तेल, सिनेमन आइल २ प्रतिशत, सिनेमिक एसिड, राल, टैनिन, शर्करा, स्टार्च, एश (भस्म) आदि द्रव्य मिलते हैं। पत्तों से गहरे रंग का लौंग के समान गन्धवाला तेल निकलता है।

गुण : यह स्वाद में कटु, मीठी, पचने पर कटु तथा हल्की, रूक्ष, तीक्ष्ण एवं गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव श्वसन-संस्थान पर कफहर रूप में पड़ता है। यह उत्तेजक, पीड़ाहर, नाड़ी-संस्थान की उत्तेजक, वायु-सारक, अग्निदीपक, यकृत-उत्तेजक, हृदय-बलकारक, क्षयहर एवं मूत्र-जनक है।

प्रयोग : १. दालचीनी का बाह्य प्रयोग लवंग-तुल्य है। पर उठते फोड़े पर इसका लेप करने से फोड़ा बैठ जाता है। पीसकर इसका तेल देने से पाचन-क्रिया सुधरती तथा आँतों की सड़न मिटती है

२. **श्वास-कास** : श्वास-कास में भी इसे देते हैं। यह कफनिःसारक है। इसकी मात्रा है ५–१५ रत्ती और तेल २–१५ बूँद। शेष प्रयोग लवंग जैसा है।

३०. पिप्पली (पीपल)

परिचय : १. इसे पिप्पली (संस्कृत), पीपल (हिन्दी), पिपुल (बंगला), पिंपली (मराठी), पीपल (गुजराती), टिपिल (तमिल), पिपुल (तेलुगु), दारफिलफिल (अरबी) तथा पाइपर लौंगम (लैटिन) कहते हैं।

२. इसकी लता भूमि पर फैलती है। पत्ते २-३ इञ्च लम्बे पान के पत्तों की तरह होते हैं। फूल १–३ इञ्च लम्बे पुष्पदण्ड पर स्थित रहते हैं। फल लम्बे, शुण्डाकार, कच्ची अवस्था में हरे, पकने पर लाल रंग के तथा सूखने पर कालापन लिये कत्थई रंग के हो जाते हैं।

३. यह विशेषत: बगाल, बिहार, असम, हिमालय की तराई आदि में होती है। पूर्वी बंगाल में इसकी खेती भी की जाती है।

४. शास्त्रों में इसकी चार जातियों का उल्लेख है : (क) पिप्पली (ऊपर-वर्णित)। (ख) राजपिप्पली। (ग) सेंहली (जहाजी पीपल) और (घ) वन्य (जंगली पीपल)।

रासायनिक संघटन : इसमें पाइपरीन नामक एल्केलायड १-२ प्रतिशत राल, उड़नशील तेल, स्टार्च, गोंद, वसा आदि मिलते हैं।

गुण : यह स्वाद में चरपरी, पचने पर मधुर तथा हल्की, चिकनी एवं तीक्ष्ण है। इसका मुख्य प्रभाव श्वसन-संस्थान पर कफहर रूप में पड़ता है। यह मस्तिष्क-बल्य, वातरोगहर, अग्निदीपक, वायु-अनुलोमक, हल्की विरेचक, शूलहर, यकृत-उत्तेजक, रक्तशोधक, मूत्रजनक, ज्वर-प्रतिबन्धक तथा रसायन है।

प्रयोग १. **कास** : छोटी पीपल का चूर्ण घी में भूनकर उसमें समान मात्रा में सेंधा नमक मिला दें। इसे रोज ३ रत्ती देने से खाँसी ठीक हो जाती है। कफज खाँसी में पिप्पली को तेल में भूनकर मिश्री

मिलाकर देना चाहिए। पुरानी खाँसी में पीपल गुड़ के साथ देनी चाहिए। इससे हृदयरोग, वायुरोग तथा कामला में भी लाभ होता है। यदि खाँसी में रक्त आता हो तो इसे वासा-स्वरस में मधु मिलाकर दें।

२. **ज्वर** : कफज्वर में पीपल का चूर्ण शहद के साथ दें।

३. **वातश्लेष्मज्वर** : वातश्लेष्मज्वर (इन्फ्लुएन्जा) में पीपल को पानी में उबालकर काढ़ा दें।

४. **अर्श** : पीपल या पीपलामूल वर्धमान पिप्पली के कल्प से मट्ठे के साथ सेवन करने पर बवासीर जड़ से मिट जाती है।

वर्धमान पिप्पली से तात्पर्य यह है कि रोज १-१ पीपल बढ़ाते हुए लें और संख्या १० कर दें। यह क्रम १० दिनों तक चलाकर फिर अनुलोम क्रम करें। इससे वातरक्त, विषमज्वर, पाण्डु, बालशोथ और हृदय-रोग दूर हो जाते हैं।

५. **प्लीहा** : प्लीहा में दूध के साथ वर्धमान-प्रक्रिया से पिप्पली लें।

६. **अम्लपित्त** : अम्लपित्त में मधु के साथ पिप्पली लें।

७. **शूल** : पीपल का काढ़ा अथवा पिट्ठी बनाकर घी में पका उसमें शहद मिलाकर दूध के साथ लेने से बढ़ा हुआ शूल बन्द होता है।

८. **जीर्णज्वर** : जीर्णज्वर में गुड़ के साथ पीपल का सेवन करें।

सावधानी : अधिक मात्रा में, अधिक दिन, अनुपातरहित अथवा विधिरहित पीपल का सेवन करने से शिरःशूल हो जाता है। इसके निवारणार्थ अर्क गुलाब दिया जा सकता है।

३१. बनफशा

परिचय : १. इसे वनपुष्पा (संस्कृत), बनफशा (हिन्दी), बनोशा (बंगला), बयिलेट्टु (तमिल), बनफसज (अरबी) तथा वायोला आडोरेटा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा छोटा, लगभग ४-५ अंगुल का होता है। पत्ते गोल, हृदय के आकार के होते हैं। नीचे का पृष्ठ रोयेंदार होता है। फूल गुच्छों में, नीले-बैंगनी रंग के और सुगन्धित होते हैं। जड़ पतली और लम्बी होती है।

३. यह कश्मीर तथा पश्चिमी हिमालय में ५ हजार फुट की ऊँचाई पर मिलता है।

४. इसकी कई जातियाँ अनेक कामों में लायी जाती हैं।

रासायनिक संघटन : इसकी जड़ तथा फूल में वायोलीन नामक वमनकारी पदार्थ रहता है। फूलों में एक उड़नशील तेल, वायोला क्वासिट्रिन नामक पीला पदार्थ, कई रंजक-द्रव्य, शर्करा तथा मेथिल सैलिसिलिक ईस्टर नामक ग्लूकोसायड होता है।

गुण : यह स्वाद में मीठा, कड़वा, पचने पर मीठा तथा हल्का, चिकना और शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव श्वसन-संस्थान पर कफहर रूप में पड़ता है। यह दाहशामक, शोथहर, हलका, वामक, विरेचक (वायु-अनुलोमक), रक्त-स्तम्भक और स्वेदजनक है।

प्रयोग : १. **पित्तशान्ति** : शरीर में विभिन्न प्रकार की गर्मी, रक्त में तीक्ष्णता तथा तृष्णा शान्त करने के लिए इसका काढ़ा लाभदायक है।

२. **कास-श्वास** : खाँसी, जुकाम तथा श्वास, पार्श्वशूल एवं ज्वर में इसका गर्म काढ़ा देना चाहिए। इससे बहुत लाभ होता है और पेट की शुद्धि भी होती है।

३२. बहेड़ा

परिचय : १. इसे विभीतक (संस्कृत), बहेड़ा (हिन्दी), बयड़ा (बंगला), बहेड़ा (मराठी), बहेड़ा (गुजराती), अक्कल (तमिल), ताड़ि (तेलुगु), बलीलज (अरबी) तथा टामेनेलिया बेलेरिका (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष काफी ऊँचा, पीलाई लिए सफेद छालवाला होता है। पत्ते बरगद के पत्तों से मिलते-जुलते, ३–६ इञ्च लम्बे और २-३ इञ्च चौड़े, छोटी टहनियों के अन्त में लगे रहते हैं। फूल छोटे, पीलापन लिये लगते हैं। फल अण्डाकार, कत्थई रंग के होते हैं। फलों में एक बीज रहता है।

३. यह भारत में सर्वत्र पाया जाता है। विशेष रूप से पहाड़ी प्रदेशों में होता है।

रासायनिक संघटन : इसके फल में गैलोटेनिक एसिड, रंजकद्रव्य और रेजिन होते हैं। बीजों में हरापन लिये पीले रंग का तेल २५ प्रतिशत होता है।

गुण : यह स्वाद में कसैला, पचने पर मधुर तथा रूखा, हल्का तथा गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव श्वसन-संस्थान (रेस्पायरेटरी सिस्टम) पर छेदक, श्लेष्महर (श्वास-नलिकाओं की सूजन कम करने तथा कफ नष्ट करनेवाला) रूप में पड़ता है। यह शोथहर, पीड़ाहर, अग्निदीपक, चर्मरोगहर, कृमिनाशक, रसायन, नेत्रों तथा केशों के लिए हितकर है।

प्रयोग : **१. शोथ** : इसके फल की मज्जा एवं छाल का लेप करने से सूजन कम हो जाती है।

२. नेत्र की सफेदी : इसके बीज की गिरी शहद में घिसकर नेत्र की सफेदी (फुल्ली) में लगाने से आराम हो जाता है।

३. श्वास-कास : सब प्रकार के श्वास-कास पर बहेड़े के फल की छाल पीसकर घी में भूनकर शहद के साथ खाने से श्वास-कास में लाभ होता है। कफ आसानी से निकल जाता है। इसे पुटपाक करके भी पका सकते हैं। मुख में टुकड़े रखने से भी लाभ होता है। इसकी मात्रा १ माशा से ३ माशा है।

४ अतिसार : इसके फल को जलाकर उसके चूर्ण में काला नमक मिलाकर देने से अतिसार मिट जाता है। मात्रा १–२ माशा है।

३३. लवंग

परिचय : १. इसे लवंग (संस्कृत), लौंग (हिन्दी), लवंग (बंगला), लवंग (मराठी), लवंग (गुजराती), किराम्बु (तमिल), कारावाल्लु (तेलुगु) तथा कैरिपोफाइल्स, एसोमेटिक्स (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष सदा हरा-भरा, ४० फुट तक ऊँचा, पीलापन लिये कत्थई रंग की छालवाला होता है। शाखाएँ चारों ओर, कोमल और नीचे झुकी रहती हैं। पत्ते हरे, ३–६ इञ्च के होते हैं। फल मांसल १ इञ्च लम्बे होते हैं जिसमें एक बीज रहता है। फूल की कलियाँ सुखाने से लौंग प्राप्त होती है।

३. यह भारत में पश्चिम भारतीय द्वीपों, दक्षिण भारत, त्रिवांकुर में अधिक होती है। इसका मूल-स्थान मलाया तथा सैलिविस द्वीप है।

रासायनिक संघटन : यह स्वाद में कड़वी, चरपरी, पचने पर कटु तथा हल्की, तीक्ष्ण, चिकनी और शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव श्वसन-संस्थान पर कफहर रूप में पड़ता है। यह मुख, कण्ठ, दन्त और चर्म को लाभकर, अग्निदीपक, कृमिनाशक, हृदय-उत्तेजक, स्तन्य (स्त्री-दुग्ध) शोधक, मूत्रजनक, क्षयहर, कटु, पौष्टिक, पीड़ाहर, तृष्णाशामक तथा वमनहर है।

प्रयोग : **१. शिरःशूल** : सिर के दर्द में लवंग को पीसकर लेप करने से दर्द तुरन्त बन्द हो जाता है।

२. दन्तरोग : दाँत में कीड़ा लगने पर लवंग को रखना या लवंग का तेल लगाना चाहिए।

३. अंजनारी : आँखों पर छोटी-छोटी फुन्सियाँ निकलने पर लवंग घिसकर लगाने से वे बैठ जाती हैं तथा सूजन भी कम हो जाती है।

४. श्वास-कास : लवंग मुख में रखने से कफ आराम से निकलता तथा कफ की दुर्गन्ध दूर होती है।

५. हैजा : हैजे में लौंग का पानी बनाकर देने से प्यास और वमन कम होकर पेशाब आता है।

६. मसूरिका : खसरा निकलने पर लौंग को घिसकर शहद के साथ देने से नष्ट होता है। यह प्रयोग सहस्रशः अनुभूत है।

३४. वासा (अडूसा)

परिचय : इसे वासा (संस्कृत), अडूसा (हिन्दी), बाकस (बंगला), अडुळसा (मराठी), अरडुसा (गुजराती), एघाडोड (तमिल), आदासरा (तेलुगु) तथा आघाटोड़ा-वासिका (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा ४-१० फुट तक ऊँचा होता है। पत्ते ३-८ इंच लम्बे होते हैं। फूल सफेद रंग के, शेर के मुख की तरह खुले रहते हैं। बीज चार होते हैं।

३. यह समस्त भारत में पैदा होता है।

४. यह दो प्रकार का होता है : (क) श्वेतवासा (अधिकतर मिलता है)। (ख) कृष्णवासा (अधिक गुणकारी, कम प्राप्त)

रासायनिक संघटन : इसमें क्षारतत्त्व वासिकिन, आघाटोडिक एसिड, सुगन्धित पदार्थ, वसा, रेजिन, शर्करा, गोंद, लवण और रंजक-द्रव्य होते हैं। वासाकिन क्षार पदार्थ जड़ की छाल में अधिक तथा पत्तियों में भी होता है।

गुण : यह स्वाद में कड़वा, कसैला, पचने पर कटु तथा हल्का, रूक्ष, शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव श्वसन-संस्थान पर कफहर रूप में पड़ता है। यह कीटाणु-नाशक, पीड़ाहर, शोथहर, स्तम्भक, दस्त आदि रोकने-

वाला, हृदयोत्तेजक, मूत्रजनक, चर्मविकारहर तथा रसादि धातुओं की क्रियाओं को ठीक करनेवाला (क्षयहर) है।

प्रयोग : १. **रक्तपित्त** : वासा की जड़ और फूलों का काढ़ा करके घी में पका शहद मिलाकर खाने से यदि कहीं से रक्त आता हो, तो वह बन्द हो जाता है।

२. **क्षय-श्वास-कास** : वासा के पुष्पों का घृत शहद मिलाकर देने से क्षय और श्वास-कास को लाभ होता है। मात्रा—१ तोला। यह घृत गुल्मरोग में भी लाभप्रद है।

३. **ज्वर** : वासा के मूल का क्वाथ देने से ज्वर को लाभ होता है।

४. **रक्त** : वासा के पत्तों का स्वरस मधु के साथ देने पर रक्त आना बन्द हो जाता है।

५ **पित्तकफ-ज्वर** : वासा के पत्ते और पुष्पों का स्वरस मिश्री और शहद मिलाकर देने से पित्तकफ-ज्वर तथा अम्लपित्त में लाभ करता है।

६. **रक्तपित्त-श्वास-कास** : वासा के पत्ते अथवा फूलों का स्वरस १ पाव लेकर ३ पाव चीनी की चाशनी कर शर्बत बना लें। इसके सेवन से श्वास और रक्तपित्त में लाभ होता है।

७. **प्रदर** : वासा के स्वरस का मधु के साथ शर्बत बनाकर देने से प्रदर ठीक होता है।

८. **मस्सा** : वासा के पत्तों को पुटपाक की रीति से उबालकर सेंक करने से गुदा के मस्सों का दर्द मिट जाता है।

३ | रक्तवह-संस्थान प्रभावक वर्ग

३५. अर्जुन

परिचय : १. इसे अर्जुन (संस्कृत), अर्जुनकाहू (हिन्दी), अर्जुन गाछ (बंगला), अर्जुन सादडा (मराठी), अर्जुन (गुजराती), मरुतै (तमिल), तेल्लमद्दि (तेलुगु) तथा टर्मिनेलिया अर्जुना (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष ६०-७० फुट ऊँचा होता है। इसकी छाल बाहर से सफेद, चिकनी और अन्दर से कोमल, मोटी तथा लाल रंग की होती है। पत्ते अमरूद के पत्तों की तरह छोटी-छोटी टहनियों पर लगे होते हैं। फूल सफेद या पीले रंग के होते हैं। फल कमरख की तरह (उससे कुछ छोटे) ५–७ पहलदार तथा १-१॥ इञ्च लम्बे होते हैं।

३. यह प्राय: सभी स्थानों पर पाया जाता है। विशेषत: पश्चिमोत्तर भारत की पथरीली भूमि, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश तथा हिमालय की तराई में मिलता है।

रासायनिक संघटन : इसकी छाल में कैलशियम कार्बोनेट ३४ प्रतिशत, कैलशियम के अन्य लवण (साल्ट्स), कषाय द्रव्य (टैनिन) १६ प्रतिशत, अल्युमिनियम, मैगनीशियम, एक सेन्द्रिय अम्ल, रंजक-द्रव्य, शर्करा आदि होते हैं।

गुण : यह स्वाद में कसैला, पचने पर कटु तथा हल्का, रूखा और शीतल होता है। इसका मुख्य प्रभाव रक्तवह-संस्थान (ब्लड सर्कुलेटरी

सिस्टम) पर हृद्य (हार्ट टानिक, हृदय-बलकारक तथा सम्बद्ध रोग-नाशक) रूप में पड़ता है। यह रक्त-स्तम्भक (टूटी हड्डियों को जोड़नेवाला) कफघ्न, मूत्रगत दाहादि का शामक, जीर्णज्वरहर, बलकारक तथा योनिस्राव-स्तम्भक है।

प्रयोग १. चोट-अस्थिभंग : इसकी छाल में चूने की अधिकता है, अतः छाल का स्वरस या काढ़ा दूध में मिलाकर पिलाने पर प्लास्टर से ठीक स्थान पर रखी हड्डी निश्चित जुड़ जाती है।

२. **झाँई** : मुख पर झाँई या काले दाग पड़ जाने पर छाल के कल्क का लेप करें।

३. **बवासीर** : बवासीर में अर्जुन की छाल के काढ़े से सेंक करें।

४. **हृदय-रोग** : हृदय-रोग में अर्जुन की छाल दूध में पकाकर मिश्री के साथ लेनी चाहिए। अर्जुन की छाल के काढ़े में गेहूँ का आटा माँड़कर उसे घी या तेल में पकाकर खाने से सम्पूर्ण हृदय-रोग नष्ट हो जाते हैं।

५. **क्षयज कास** : क्षयज कास में अर्जुन की छाल का स्वरस मधु, मिश्री और घी में मिलाकर लेने से अतिलाभ होता है।

६. **रक्तपित्त** : अर्जुन के स्वरस के साथ आम और जामुन के पत्तों का स्वरस लेने पर कहीं से भी आनेवाला रक्त रुक जाता है। यह रक्त पित्त में विशेष काम करता है।

७. **रक्तातिसार** : अर्जुन की त्वचा को दूध और मधु के साथ लेने से रक्तातिसार में लाभ होता है।

३६. रोहेड़ा

परिचय : १. इसे रोहितक, कूटशाल्मलि (संस्कृत), रोहेड़ा (हिन्दी), रोहिडा (मराठी), रोहिडो (गुजराती) तथा टिकोमेला अण्ड्यूलेटा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष मध्यमाकार तथा छोटा होता है। पत्ते ५-६ इञ्च लम्बे और १। इञ्च चौड़े, आगे के भाग पर नोक-रहित, लहरदार किनारेवाले होते हैं। फूल छोटे, लाल-पीले रंग के, शाखाओं के अगले भाग पर लगते हैं। फल पतले, कुछ टेढ़े और ८ इञ्च लम्बे होते हैं। बीज पंख के समान १ इञ्च लम्बे होते हैं।

३. यह विशेष रूप से, राजस्थान, पंजाब, काठियावाड़ आदि प्रदेशों में मिलता है।

गुण : रोहेड़ा स्वाद में चरपरा, कड़वा, कसैला, पचने पर कटु तथा हल्का, चिकना और शीतल होता है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर यकृत-प्लीहा-रोगहर और पित्तसारक रूप में पड़ता है। यह नेत्रों के लिए लाभकर, घाव भरनेवाला, रुचिकर, अग्निदीपक, भेदन, कृमिहर, रक्तशोधक, मूत्रसंग्राहक, योनिस्रावहर, मेदनाशक तथा विषहर है।

३७. शरपुंखा (सरफोंका)

परिचय : १. इसे शरपुंखा (संस्कृत) सरफोंका (हिन्दी), बन-तील (बंगला), उन्हाली (मराठी), शरपंखो (गुजराती) कमुविक-वेलाई (तमिल), वेंपलि (तेलुगु) तथा टेफ्रीजिया पर्प्युरिया (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा २-३ फुट ऊँचा, झाड़ीनुमा हर वर्ष उत्पन्न होता है। पत्ते ३-६ इञ्च लम्बे होते हैं, जिसमें कई (१३-२१) छोटे पत्रक रहते हैं। फूल लाल रंग के ३-६ इञ्च लम्बे डंठल पर लगते हैं। फली १-२ इञ्च लम्बी तथा ६-१० बीजों से युक्त होती है।

३. लाल तथा सफेद रंग के फूलों के भेद से इसकी दो जातियाँ होती हैं।

४. यह समस्त भारत में, अधिकतर पथरीली भूमि में उत्पन्न होता है। सफेद जाति का पौधा कम प्राप्त होता है।

रासायनिक संघटन : इसमें क्लोरोफिल, राल, मोम, क्वेर्सेटीन के समान एक पदार्थ, गोंद, कुछ एल्ब्यूमिन, रंजक-द्रव्य, एश (भस्म) ६ प्रतिशत होते हैं।

गुण : यह स्वाद में कड़वा, कसैला, पचने पर कटु तथा हल्का, रूखा, तीक्ष्ण और गर्म होता है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर यकृत-प्लीहारोगहर रूप में पड़ता है। यह शोथहर, चर्मरोगहर, कीटाणुहर, घाव भरनेवाला, रक्तशोधक, कफ-निःसारक, मूत्रजनक, गर्भाशय-उत्तेजक, रसायन, ज्वरहर, अग्निदीपक तथा विषहर है।

प्रयोग १. **गुल्मरोग :** शरपुंखा का मूल, हरड़ और सेंधानमक समान लेकर ३ माशा चूर्ण खाने से गुल्मरोग एवं उदर-शूल दूर होता है।

२. **प्लीहा** : शरपुंखा की जड़ को मट्ठे के साथ पीसकर लेने से तिल्ली कितनी भी बढ़ गयी हो, निश्चित ठीक होती है।

३. **दन्तरोग** : इसकी जड़ से नित्यप्रति दातौन करने पर दाँतों का कोई रोग नहीं होता।

४. **शस्त्रक्षत** : किसी शस्त्र से कट जाने पर शरपुंखा के मूल को दाँतों से चबाकर बाँध देने से रक्त बन्द हो जाता है।

५. **मूषक-विष** : चूहे के काटने पर शरपुंखा के बीजों को मट्ठे में पीसकर द।

४ पाचन-संस्थान प्रभावक वर्ग

३८. अजवायन

परिचय : १. इसे यवानी (संस्कृत), अजवायन (हिन्दी), जोमान (बंगला), ओंवा (मराठी), अजवा (गुजराती), आमन (तमिल), ओमान (तेलुगु), क्युनुत्मुल्की (अरबो) तथा कैरम कास्टिकम् (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा ३-४ फुट ऊँचा होता है। पत्ते सोया के समान और फूल सफेद, छाते के आकार के होते हैं। बीज छोटे, पीलाई लिये होते हैं। इन्हीं बीजों को अजवायन कहते हैं।

३. समस्त भारत में इसकी खेती की जाती है।

रासायनिक संघटन : इसके बीजों में एक सुगन्धित तेल होता है। शीतलता से वह जम जाता है। इसे 'सत अजवायन' कहते हैं।

गुण : यह स्वाद में चरपरी, कड़वी, पचने पर कटु तथा हल्की, रूक्ष, तीक्ष्ण और गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर शूलहर रूप में पड़ता है। यह पीड़ाहर, शोथहर, वायु-अनुलोमक, कृमिहर, हृदयोत्तेजक, कफहर, मूत्रजनक, गर्भाशय-उत्तेजक, चर्मरोगहर, ज्वरहर, बिषहर तथा कटु-पौष्टिक है।

प्रयोग १. उदर-कृमि : अजवायन का तेल ३-७ बूँद तक देने से विशूचिका तथा उदर-कृमि नष्ट होते हैं।

२. **उदर-शूल** : अजवायन २ माशा और नमक १ माशा गर्म पानी

के साथ देने से उदर-शूल बन्द होता है और पाचन-क्रिया ठीक होती है। पतले दस्त होते हों तो वे भी बन्द होते हैं तथा प्लीहा की विकृति दूर हो जाती है।

३. हृदय शूल : हृदय-शूल में अजवायन देने से शूल बन्द होकर हृदय उत्तेजित होता है।

४. शीतपित्त : अजवायन २ माशा और गुड़ ३ माशा मिलाकर खाने से शीतपित्त दूर हो जाता है।

५. स्त्री-रोग : प्रसूतावस्था में गुड़ और अजवायन देने से कमर का दर्द मिटता है, गर्भाशय की शुद्धि होती है, रक्त साफ आता है, भूख लगती है तथा बल बढ़ता है। दर्द एवं रुककर आनेवाले मासिक-धर्म में भी इससे लाभ होता है।

६. ज्वर : विषम-ज्वर में अजवायन देने से ज्वर रुक जाता है। ज्वरोपरान्त की दुर्बलता, आलस्य एवं अपचन में भी एक माशा अजवायन रात्रि को भिगोकर सुबह पीसकर नमक मिलाकर गुनगुना करके पिलाना चाहिए।

७. मूत्रकृच्छ्र : अजवायन २ माशा और मिश्री ३ माशा २-३ बार देने से पेशाब खुलकर आती है।

८. अफीम की लत : अफीम खाने की आदतवालों को अजवायन का सेवन कराते रहने से अफीम के विकार नहीं होते तथा धीरे-धीरे अफीम की आदत भी छूट जाती है।

९. कर्ण-शूल : अजवायन को तेल में पकाकर कान में वह तेल डालने से कर्णशूल शान्त होता है।

१०. दन्त-कृमि : दाँत में कीड़ा लगने पर अजवायन का धुआँ लेना चाहिए।

अदरख (सोंठ)

परिचय : १. इसे आर्द्रक (संस्कृत), अदरख-आदी (हिन्दी), आदा (बंगला), आल (मराठी), आदू (गुजराती), इंजि (तमिल) तथा अल्लम (तेलुगु) कहते हैं। इसके सूखे कंद को 'शुण्ठी' या 'सोंठ' कहते हैं। लैटिन में इसे 'जिंजिबार औफिसिनेल' कहते हैं।

२. इसका पौधा ३-४ फुट ऊँचा और पत्ते १-१२ इञ्च लम्बे होते हैं। २-३ इञ्च लम्बे डंठल पर गहरे बैंगनी रंग के फूल आते हैं। यह समस्त भारत के उष्ण तथा आर्द्र प्रदेशों में विशेषतः मद्रास, बंगाल, कोचीन में पाया जाता है।

रासायनिक संघटन : इसमें हल्के पीले रंग का सुगन्धित, उड़नशील तेल १–५ प्रतिशत पाया जाता है। इसमें जिंजिरोल तथा जिंजरीन नामक तत्त्व होते हैं।

गुण : यह रस में चरपरा, लघु, तीक्ष्ण, उष्ण तथा पचने पर मधुर-विपाकी है। यह रोचन, दीपन, शूल-प्रशामक, उत्तेजक, कफघ्न, रक्त-शोधक और वातरोग-नाशक है।

प्रयोग : १. **मूत्रकृच्छ्र** : पेशाब के समय दर्द तथा रक्त आता हो तो सोंठ पीसकर दूध में छानकर मिश्री मिलाकर दिया जाय।

२. **आमवात** : आमवात में सोंठ और गोखरू का काढ़ा दें।

३. **कर्ण-शूल** : अदरख का रस गर्म कर या तेल में मिलाकर कान में डालने से कर्णशूल बन्द हो जाता है।

४. **वृश्चिक-दंश** : बिच्छू काटा हो तो सोंठ को पानी में घिसकर नस्य देना चाहिए। जिस तरफ बिच्छू ने काटा हो, उसके दूसरी ओर नस्य देने तथा आँख में मदिरा डालने से भी दंश की वेदना तुरन्त शान्त होती है।

५. **शिरःशूल** : सोंठ को घिसकर उसका ४ बूँद पानी आँखों में डालने से शिरःशूल तुरन्त बन्द हो जाता है।

६. **शोथ** : ३ माशे से १ तोले तक सोंठ गुड़ के साथ लेने से शोथ, बवासीर और पाण्डुरोग मिट जाते हैं।

७. **वात-श्लेष्म-ज्वर** : सोंठ ३ माशा, तुलसी ७ पत्ती, कालीमिर्च ७ दाना, एक पाव पानी में पकाकर चीनी मिलाकर गरम-गरम पीने से इन्फ्लूएंजा, जुकाम, खाँसी और सिर-दर्द दूर हो जाता है।

४०. अपामार्ग (चिचड़ा)

परिचय : १. इसे अपामार्ग (संस्कृत), चिचड़ा (हिन्दी), आपाड़ (बंगला), आघाडा (मराठी), अघेड़ो (गुजराती), नाजुरिवी (तमिल), अपामार्गम् (तेलुगु), अल्कुम (अरबी) तथा एकायरेन्थस एस्पेरा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा १-२ फुट ऊँचा, शाखाएँ फैली हुई आगे के भाग में मोटी होती हैं। पत्ते कुछ अण्डाकार या गोलाकार, ३–५ इञ्च लम्बे और २–३ इञ्च चौड़े, कोमल एवं रोंयेदार होते हैं। फूल लम्बे डंठल पर हरापन लिये सफेद रंग के छोटे-छोटे होते हैं। फल छोटे, लम्बे और उलझ जाने-वाले होते हैं।

३. सफेद तथा लाल रंग के भेद से इसकी दो-तीन जातियाँ होती हैं।

४. यह भारत के समस्त प्रान्तों में मिलता है। लाल अपामार्ग कम प्राप्त होता है।

रासायनिक संघटन : इसके बीज तथा समस्त पौधे में पोटाश क्षार विशेष रूप से मिलता है।

गुण : यह स्वाद में चरपरा, कड़वा, पचने पर कटु तथा हल्का, रूखा, तीक्ष्ण, गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर यकृत-

उत्तेजक और अग्निदीपक रूप में पड़ता है। यह शोथहर, पीड़ाशामक, विषहर, कृमिहर, हृदय-बलकारक, रक्त-शोधक, कफ-निःसारक, मूत्र-जनक, चर्म-रोगहर तथा कटु पौष्टिक है।

प्रयोग १. विशूचिका : अपामार्ग की जड़ पानी में पीसकर पीने से विशूचिका में लाभ होता है।

२. **रक्तार्श :** अपामार्ग के बीजों की पिट्ठी चावल के धोये पानी के साथ लेने से रक्त बन्द हो जाता है।

३. **पथरी :** पथरी शर्करा निकालने के लिए अपामार्ग के क्षार को भेड़ के मूत्र के साथ लें।

४. **विषमज्वर :** अपामार्ग की जड़ को लाल सूत्र में लपेटकर रविवार को कमर या बायें हाथ में बाँधने से तिजारी ज्वर दूर होता है।

५. **बधिरता :** अपामार्ग-क्षार को तेल में पकाकर वह तेल कान में डालने से बधिरता दूर होती है।

६. **व्रणसंयोजन :** कटने से रक्त निकलने पर तत्काल अपामार्ग के पत्तों का रस डालने से रक्त बन्द हो जाता है।

७. **वृश्चिकदंश :** अपामार्ग की हरी शाखा लेकर ऊपर से नीचे की ओर फेरने से वृश्चिकदंश का विष तुरन्त उतर जाता है।

८. **सर्प-विष :** सर्प-विष में इसकी जड़ पीसकर चावल के धोवन में घी मिलाकर देना चाहिए।

सावधानी : अधिक सेवन से यह क्षुधा कम करता है। अतः उचित मात्रा में ही लिया जाय।

४१. आक (मदार)

परिचय : १. इसे अर्क (संस्कृत), आक, मदार (हिन्दी), आकन्द (बंगला), रूई (मराठी), आकडो (गुजराती), एराखाम (तमिल),

मन्दारासु (तेलुगु), उषर (अरबी) तथा कैलोट्रोपिस प्रोसेरा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा ऊँचा, झाड़ी की जाति का होता है। पत्ते २-६ इञ्च लम्बे, २-३ इञ्च चौड़े, नुकीले, ऊपरी पृष्ठ चिकना और निचला पृष्ठ सफेद होता है। फूल जाले के आकार के सफेद, भीतर से बैंगनी रंग के लगते हैं; जो लम्बे रूई से भरे, टेढ़े, ४-६ अङ्गुल लम्बे होते हैं। बीज काले रंग के होते हैं।

३. यह प्रायः सारे भारत में मिलता है।

४. इसके मुख्य रूप से दो भेद होते हैं : (क) अर्क (रक्त वर्ण के फूलवाला)। (ख) अलर्क (श्वेत वर्ण के फूलवाला)।

रासायनिक संघटन : इसकी जड़ की छाल में मदार एल्बन नामक तत्त्व, मदार फलैविल आदि तत्त्व मिलते हैं।

गुण : यह स्वाद में चरपरा, कड़वा, पचने पर कटु तथा हल्का, रूखा, तीक्ष्ण और गर्म। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर भेदक (दस्त लानेवाला) रूप में पड़ता है। यह पीड़ाशामक, शोथहर, कृमिहर, वमनकारक, अग्निदीपक, पाचक, हृदयोत्तेजक, रक्तशोधक, कफनिःसारक, कुष्ठहर, ज्वरहर तथा कटु-पौष्टिक है।

प्रयोग : **१. श्लीपद** : अर्क की जड़ का वकल काँजी में पीसकर लेप करने से हाथीपाँव में लाभ होता है।

२. मुखकृष्णता : आक का दूध हल्दी मिलाकर लेप करने या मलने से मुख के काले दाग मिट जाते हैं।

३. पामा : आक का दूध तेल में मिलाकर लगाने से दाद और सब प्रकार की खुजली दूर हो जाती है।

४. **वृश्चिकदंश :** जिस स्थान पर बिच्छू काटे, वहाँ का रक्त निकालकर अर्कदुग्ध लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

अर्क-लवण बनाने की विधि : आक के पीले पत्ते और काला नमक बराबर लेकर पत्तों के नीचे-ऊपर नमक लगा एक हाँड़ी में रखें। ऊपर से कपड़-मिट्टी कर उपलों में रखकर फूँक दें। शीतल होने पर निकाल लें। इसी काली दवा को 'अर्क-लवण' कहते हैं।

५. **प्लीहा :** ३ रत्ती अर्क लवण सुबह मट्ठे के साथ ३ सप्ताह तक लेने से बढ़ी तिल्ली मिट जाती है।

६. **कास :** कफ की खाँसी में ३ रत्ती अर्क-लवण शहद तथा अदरख के साथ लें। सूखी खाँसी में ३ रत्ती सायं-प्रात: मलाई के साथ लें। उदरशूल में गर्म जल के साथ ३ रत्ती लें। शीत-ज्वर में ३ रत्ती अर्क-लवण गर्म जल के साथ एक घण्टे के अन्तर पर दिन में ३ बार लें। दाँत के दर्द या मसूढ़ों की सूजन पर इसका मंजन करें। शीतपित्त में घी या तेल में मिला अर्क-लवण मलें। स्त्री के मासिक-धर्म की रुकावट पर ४ रत्ती अर्क-लवण गर्म जल के साथ ४ दिन पहले से प्रतिदिन ३ मात्रा देने पर मासिक-धर्म खुलता तथा बिना कष्ट के होता है।

७. **अपस्मार :** आक के पत्तों में तेल लगा गर्म करके दोनों पैरों के तलवों में बाँध देने से मृगी मिटती है।

४२. इन्द्रायण

परिचय : १. इसे इन्द्रवारुणी (संस्कृत), इन्द्रायण, इनास (हिन्दी), राखालसा (बंगला), इन्द्रवण (मराठी), इन्द्रवणा (गुजराती), पेतिकारि (तमिल), पापरबुडम् (तेलुगु), हंजल (अरबी) तथा सिट्रयुलुस कोलोसिन्थिस (लैटिन) कहते हैं।

२. इसकी बेल जमीन पर फैलनेवाली, रोमयुक्त और खुरदरी होती है। पत्ते कटे, किनारेदार, तरबूजे की पत्तियों के समान, २-३ इञ्च लम्बे

होते हैं। फूल घण्टे के आकारवाले, पीले रंग के होते हैं। फल गोल २-४ इञ्च गोलाई के, चिकने, कच्ची अवस्था में हरे और पकने पर पीले रंग के रहते हैं। बीज कत्थई या कालापन लिये होते हैं।

३. इसकी कई जातियाँ होती हैं, जिनमें मुख्य दो हैं : (क) इन्द्रायण (छोटी इन्द्रायण, ऊपर वर्णित)। (ख) विशाल (बड़ी इन्द्रायण, फल बड़े और लाल)।

४. यह भारत में सर्वत्र, विशेषतः मध्यभारत, राजस्थान और पश्चिमोत्तर प्रदेश में होती है।

रासायनिक संघटन : इसके फल के गूदे में एक कड़वा सत्त्व कोलोसिन्थिन, एक ग्लूकोसाइड १४ प्रतिशत, कोलेसिन्थेटिन, पेक्टिन, गोंद तथा क्षार ११ प्रतिशत होते हैं। जड़ में भी कुछ मात्रा में कोलोसिन्थिन तत्त्व मिलता है।

गुण : यह स्वाद में कड़वा, पचने पर कड़वा तथा हल्का, रूखा, तीक्ष्ण और गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर भेदक (दस्त लानेवाला) और विरेचक (पर्गेटिव) रूप में पड़ता है। यह केशवर्धक, रक्तशोधक, शोथहर, कफनिःसारक, प्रमेहहर, व्रणशोधक तथा कटु-पौष्टिक है।

प्रयोग १. कामला : कामला में इन्द्रायण की जड़ का चूर्ण १-२ माशा गुड़ के साथ दें।

१. उन्माद : उन्माद में इन्द्रायण के फल का गूदा १-३ माशा गोमूत्र के साथ दें।

३. वातरोग : वातरोग, संधिवात, अर्दित और जलोदर में इन्द्रायण की जड़ १ माशा, पिप्पली-चूर्ण १ माशा, गुण ३ माशा मिलाकर दें।

४. स्त्री-स्तन-शोथ : इन्द्रायण की जड़ का लेप करने से स्त्री के स्तनों का शोथ एवं उठता हुआ फोड़ा मिट जाता है।

५. प्लीहावृद्धि : तिल्ली बढ़ने पर उस रोगी का नाम लेकर यदि इसकी जड़ उखाड़कर कहीं दूर फेंक चले जायँ, तो तिल्ली में लाभ होता है। यह कार्य प्रभावजन्य है।

६. इन्द्रलुप्त : सिर में फुन्सी होने तथा बाल चिपकने पर इसकी जड़ का गोमूत्र के साथ लेप करने से ३ दिन में लाभ होता है।

सावधानी : अधिक सेवन से मरोड़ तथा बड़ी आँत में सूजन हो जाती है। अतः इसे सतर्कता से काम में लाना चाहिए।

४३. इलायची

परिचय : १. इसे एला (संस्कृत), इलायची (हिन्दी), छोर एलाच (बंगला), वेलची (मराठी), एलची (गुजराती), इल्लाई (तमिल), इल्लाई (तेलुगु), काकुल (अरबी) तथा एलिटेरिया कार्डेमोमम् (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा पत्रयुक्त होता है। पत्ते १-२ फुट लम्बे, १-२ इञ्च चौड़े सुगन्धित होते हैं। लम्बे फूलों के डंठल पर फल लगते हैं। फलों में काले रंग के, तेज गन्धवाले बीज रहते हैं।

३. गुजरात, मैसूर आदि प्रदेशों में अधिक पायी जाती है।

४. इलायची की दो जातियाँ हैं : (क) छोटी इलायची, (ख) बड़ी इलायची।

रासायनिक संघटन : इसके बीजों में स्थिर तेल १० प्रतिशत, उड़नशील तेल ५ प्रतिशत, पोटाशियम लवण ३ प्रतिशत, पीला रंजक-द्रव्य, भस्म ६–१० प्रतिशत, स्टार्च ३ प्रतिशत आदि पदार्थ मिलते हैं।

गुण : यह स्वाद में चरपरी, मीठी, पचने पर मधुर तथा हल्की, रूखी और शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव सर्वशरीर पर दाहशामक (शरीर तथा अन्य अंगों की जलन शान्त करनेवाला) रूप में पड़ता

है। यह मुखशोधक, दुर्गन्धिनाशक, वमन-शामक, रुचिकारक, अग्नि-दीपक, हृदय-बलदायक, कफनिःसारक, मूत्रजनक, शूलहर तथा बल-कारक है।

प्रयोग : १. दाह-तृष्णा : छोटी इलायची २ नग, बड़ी इलायची २ नग, मुनक्का ३ नग पीसकर मिश्री डालकर देने से दाह-तृष्णा कम होती है।

२. **शिर-शूल** : छोटी और बड़ी इलायची पीसकर सिर पर लेप करने से शिरःशूल बन्द होता है।

३. **मूत्रकृच्छ्र** : छोटी और बड़ी इलायची को पीसकर दूध के साथ लेने से मूत्र खुलता तथा मूत्र-दाह बन्द होता है।

४४. कबीला

परिचय : १. इसे कम्पिल्लक (संस्कृत), कबीला (हिन्दी), कक-लागुण्डी (बंगला), कपिला (मराठी), कपीलो (गुजराती), कपिलो-पेदि (तमिल), सुन्दर शुण्डी (तेलुगु), कम्बील (अरबी) तथा मेलो-टेस फिलीपाइनेन्सिस (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष मध्यम आकार का और हरा-भरा होता है। पत्ते गूलर के पत्तों के समान, ३–६ इञ्च लम्बे, डंठल के किनारे दो गाँठों तथा पत्ते के नीचे तीन-तीन लाल शिराओं से युक्त होते हैं। फूल छोटे-छोटे, गहरे लाल रंग के डंठल पर लगते हैं। फल बेर के समान होते हैं। बीज गोल, चिकने और काले रंग के होते हैं।

रासायनिक संघटन : इसमें रॉटलरीन-युक्त लाल-पीली राल ८ प्रतिशत, उड़नशील तेल, टैनिन, स्टार्च, एल्ब्यूमिन, गोंद आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

गुण : यह स्वाद में चरपरा, पचने पर कटु तथा हल्का, रूखा, तीक्ष्ण

और गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर भेदक रूप में पड़ता है। यह कुष्ठहर, कृमिनाशक, रक्तशोधक और मूत्रजनक है।

प्रयोग : १. गुल्म : कबीले का चूर्ण २ माशा मधु के साथ देने से गुल्म रोग ठीक होता तथा मल निकलता है।

२. **उदरकृमि** : कबीले का चूर्ण १–३ माशा घी-गुड़ के साथ देने से उदरकृमि निकल आते हैं।

३. **गुदाकण्डू** : कबीले के चूर्ण को तेल में मिलाकर गुदा में लगाने से बच्चों की गुदा की खुजली या सुर्खी में बहुत लाभ होता है।

४. **व्रण** : कबीला १ तोला, मुर्दाशंख १, पापड़ी १ तोला पीसकर पाउडर जैसा बनाकर गीले घावों पर रूई में लगाकर ऊपर छिड़कने से फोड़े शीघ्र भर जाते हैं। सूखे घावों पर घी या वेसलीन मिलाकर लगायें। यह उपदंश तथा फिरंग पर भी काफी लाभप्रद है।

४५. काली मिर्च

परिचय : १. इसे मरिच (संस्कृत), काली मिर्च (हिन्दी), गोल मरिच (बंगला), मिरी (मराठी), मरी (गुजराती), मिलागू (तमिल), मिरियालू (तेलुगु), फिलिफिल् अस्वद (अरबी) तथा पाइपर नाइग्रम (लैटिन) कहते हैं।

२. इसकी वृक्षों पर चढ़नेवाली मोटी बेल होती है, जो शाखाओं की गाँठों से निकलती और जड़ों से चिपटी रहती है। पत्ते पान के आकार के, ५–७ इञ्च लम्बे, २–५ इञ्च चौड़े होते हैं। फूल छोटे आते हैं। फल छोटे और गोल गुच्छों में लगते हैं, जो कच्ची अवस्था में हरे, पकने पर लाल तथा सूखने पर काले रंग के हो जाते हैं।

३. यह विशेषतः मलाया, कोंकण प्रदेश, कूचबिहार, असम तथा मलाबार में होती है।

रासायनिक संघटन : इसके फल के छिलके में एक उड़नशील क्षार-तत्त्व ५–९ प्रतिशत, पाइपरिडिन ५ प्रतिशत, सुगन्धित उड़नशील तेल १-२ प्रतिशत और फैट ७ प्रतिशत होते हैं। फल के गूदे में कटु रेजिन पदार्थ चविकिन, उड़नशील तेल, स्टार्च, गोंद, चिकना भाग १ प्रतिशत, प्रोटीन ७ प्रतिशत तथा क्षार ५ प्रतिशत होते हैं।

गुण : यह स्वाद में चरपरी, पचने पर कटु तथा हल्की, तीक्ष्ण, गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान (डायजेस्टिव सिस्टम) पर अग्नि-दीपक रूप में पड़ता है। यह कृमिनाशक, शूलहर, रुचिकर, कफहर, मूत्रजनक, आर्तवजनक, नाड़ीबलकारक, यकृत-उत्तेजक, चर्मरोगहर तथा ज्वरहर है।

प्रयोग १. उदरकृमि : काली मिर्च १ माशा पीसकर मट्ठे के साथ देने से उदरगत कृमि दूर हो जाते हैं।

२. **प्रवाहिका :** प्रवाहिका (डिसेण्टरी) में काली मिर्च खाने से लाभ होता है।

३. **कास :** मरिच का चूर्ण, शर्करा, घृत और शहद के साथ कास में दें। श्वास कास में काली मिर्च १० नग, चीनी १ तोला चाशनी बना चाटें और ऊपर से दूध पीयें। सूखी खाँसी में काली मिर्च और मिश्री को मुख में रखें। इससे गला भी खुल जाता है।

४. **धनुस्तम्भ :** मरिच-चूर्ण ४ रत्ती, बचा-चूर्ण १ माशा खट्टे दही के साथ प्रातः खाली पेट देने से धनुस्तम्भ (टिटनेस) तथा झटके आने में लाभ होता है।

५. **पीनस :** काली मिर्च का चूर्ण दही के साथ गुड़ डालकर खाने से पीनस रोग मिटता है।

६. **सूजन :** काली मिर्च का चूर्ण १ रत्ती मक्खन के साथ देने से बालकों की सूजन दूर होती है।

७. शूल : काली मिर्च को दूध में घिसकर नस्य देने से शूल बन्द होता है।

८. दाद-खुजली : काली मिर्च का चूर्ण गाय के घी के साथ लेने से सब प्रकार की खुजली एवं विष का प्रभाव दूर होता है।

९. नेत्रकण्डू : नेत्र की खुजली में शाम को इमली के रस में काली मिर्च घिसकर लगायें।

४६. कुटकी

परिचय : १. इसे तिक्त (संस्कृत), कुटकी (हिन्दी), कटकी (बंगला), काली कुटकी (मराठी), कडू (गुजराती), कडुगुरोहिणी (तमिल), कटुकी (तेलुगु), खरबके हिन्दी (अरबी) तथा पिक्रोराईजाकुरो (लैटिन) कहते हैं।

२. यह बरसात में होनेवाला छोटा पौधा है। पत्ते २–४ इञ्च लम्बे, अण्डाकार, जड़ की अपेक्षा आगे की ओर कुछ चौड़े, चिकने, झालरदार होते हैं। पौधे के बीच से निकले डंठल पर नीले या सफेद रंग के अनेक फूल लगते हैं। फल आकार और रंग में कुछ जौ से मिलते-जुलते होते हैं। जड़ बहुत कड़वी, ६–७ इञ्च तक लम्बी, अंगुली की तरह मोटी, खुरदरी, सूक्ष्म ग्रन्थियुक्त और भूरे रंग की होती है।

३. यह हिमालय पर ६–१४ हजार फुट की ऊँचाई पर कश्मीर से सिक्किम तक प्राप्त होती है।

रासायनिक संगठन : इसकी जड़ में एक कड़वा सत्त्व पिक्रोराइजिन १५ प्रतिशत, केथेर्टिक एसिड ९॥ प्रतिशत, कुछ ग्लूकोज, मोम आदि पदार्थ होते हैं।

गुण : यह स्वाद में कड़वी, पचने पर कटु तथा रूखी, हल्की और शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर भेदक (दस्त लाने-

वाला) और विरेचक रूप में पड़ता है। यह अग्निदीपक, यकृत-उत्तेजक, हृदय-बलदायक, रक्तशोधक, शोथहर, रक्त-भारवर्धक (ब्लडप्रेशर बढ़ानेवाला), स्त्रीदुग्धशोधक, मेदहर, कफनिःसारक, कटु-पौष्टिक, दाह-शामक, ज्वरहर तथा कुष्ठहर है।

प्रयोग : १ पित्तज्वर : कुटकी-चूर्ण २ माशा, शर्करा ६ माशा मिलाकर देने से रेचन होकर ज्वर शान्त होता है।

२. **हृदय-रोग** : २ माशा कुटकी चूर्ण के साथ मुलेठी का चूर्ण ३ माशा मिलाकर मिश्री के शर्बत के साथ देने से हृदय की गति कम होती है, पर शक्ति बढ़ती है। रक्तचाप (ब्लडप्रेशर) बढ़ता एवं दीपन, पाचन होकर दस्त होते हैं।

३. **यकृत-विकार** : यकृत-विकार या हाथ-पैरों की सूजन में कुटकी का प्रयोग करें।

४. **उदर-कृमि** : उदर-कृमि, पित्त तथा कफ विकारों में कुटकी बहुत लाभ करती है।

सावधानी : इनके अधिक सेवन से कंठशोथ, वमन तथा आक्षेप होने लगते हैं। इनके निवारणार्थ बादाम का तेल मस्तगी-चूर्ण के साथ दें।

४७. कुटक (कुरैया)

परिचय : १. इसे कुटज (संस्कृत), कूड़ा या कुरैया (हिन्दी), कुरजी (बंगला), कुड़ा (मराठी), कुड़ो (गुजराती), वेप्पलाई (तमिल), कछोडाइस् (तेलुगु) तथा मोलेरीना एण्टी डिसेण्टीरिका (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पेड़ मध्यम आकार का, कत्थई या पीलाई लिये कोमल छालवाला होता है। पत्ते ६–१२ इञ्च लम्बे, १-१॥ इञ्च चौड़े होते हैं। फूल सफेद, १-१॥ इञ्च लम्बे, चमेली के फूल की तरह कुछ गन्धयुक्त

होते हैं। फल ८–१६ इञ्च लम्बे, फली के समान होते हैं। दो फलियाँ डंठल तथा सिरों पर भी मिली-सी रहती हैं। बीज जौ (यव) के समान अनेक, पीलापन लिये कत्थई रंग के होते हैं। ऊपर से रूई चढ़ी रहती है। इसे 'इन्द्र जौ' (इन्द्रयव) कहते हैं।

३. इसकी जातियाँ दो होती हैं : (क) कृष्ण-कुटज (स्त्री-जाति का) और (ख) श्वेत-कुटज (पुरुष-जाति का)।

४. यह हिमालय प्रदेश, बंगाल, असम, उड़ीसा, दक्षिण भारत तथा महाराष्ट्र में प्राप्त होता है।

रासायनिक संघटन : इसकी छाल तथा बीज-अंगों में कुर्चिसिन तथा कुर्चीन तत्त्व पाये जाते हैं।

गुण : यह स्वाद में कड़वा, कसैला, पचने पर कटु तथा हल्का, रूखा और शीतल होता है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर स्तम्भक रूप में पड़ता है। यह व्रण-रोपण (घाव भरनेवाला), अग्नि-दीपक, कृमिहर, रक्तशोधक, ज्वरहर, धातुशोषक तथा रक्त-स्तम्भक है।

प्रयोग : १. रक्त-पित्तातिसार : कुटज की छाल को पीसकर सोंठ के साथ देने से रक्त बन्द होता है। रक्त-पित्त में घी के साथ देने से रक्त आना रुकता है। कुटज के फल पीसकर देने से रक्तातिसार और पित्तातिसार में लाभ होता है।

२. रक्तार्श : इसकी छाल पीसकर पानी में रात्रि को भिगोकर सुबह छानकर पीने से खूनी बवासीर में निश्चित लाभ होता है।

३. प्रमेह : प्रमेह में उपर्युक्त विधि से फूलों को पीसकर दें।

४८. घीकुवार

परिचय : १. इसे कुमारी (संस्कृत), घीकुवार, ग्वारपाठा (हिन्दी), घृतकुमारी (बंगला), कोरफड (मराठी), कुंवार (गुजराती),

काट्टौली (तमिल), घुसमसरम् (तेलुगु), सब्बारत (अरबी) तथा एलो बेरा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा १-२ फुट ऊँचा होता है। पत्ते १-१॥ हाथ लम्बे, मोटे, किनारों पर मोटे काँटों से युक्त तथा घी की तरह लुआब से भरे रहते हैं। फूल पुराने पौधे के बीच से निकले डंठल पर लाल रंग के निकलते हैं।

३. यह समस्त भारत में, विशेषतः दक्षिण भारत में उत्पन्न होता है।

रासायनिक संघटन : इसमें अलोइन या बार्बेलोइन नामक ग्लूकोसाइड, एलोएमोडीन, रेजिन आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

गुण : यह स्वाद में कड़वा, मीठा, पचने पर कटु, भारी, चिकना तथा शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर भेदक (दस्त लानेवाला) रूप में पड़ता है। यह शोथहर, पीड़ाशामक, अग्निदीपक, यकृत-उत्तेजक, व्रणरोपक रक्तशोधक, कृमिहर, मूत्रजनक, गर्भाशय-उत्तेजक, चर्मरोगहर, जीर्णज्वरहर तथा कटु-पौष्टिक है।

प्रयोग १. कामला : घीकुवार के गूदे का रस निकाल नस्य देने से कामला शीघ्र नष्ट होता है।

२. **गुल्म** : गुल्म में घीकुवार के गूदे को घी में भूनकर खायें।

३. **प्लीहा** : हल्दी और नमक के साथ इसका गूदा १ तोला सुबह खाने से बड़ी-से-बड़ी तिल्ली मिट जाती है।

४. **फोड़ा** : फोड़े पर इसके लेप से लाभ होता है।

५. **स्त्री-रोग** : इसके गूदे को गर्म कर गुड़ मिलाकर पिलाने से रुका मासिक-धर्म खुल जाता है। कमर और पेट का दर्द भी दूर हो जाता है।

६. **मानसिक रोग** : १० सेर घीकुवार का गूदा २॥ सेर गाय के घी

में पकायें। घी शेष रहने पर छान लें। इसे प्रातःसायं १ तोला सेवन करने से पागलपन, मिरगी (अपस्मार), हिस्टीरिया (योषापस्मार) और बालापस्मार मिट जाता है।

७. **अग्निदग्ध** : जले हुए स्थान पर इसका गूदा लगायें।

८. **चोट** : गेहूँ का आटा और हल्दी घीकुवार के गूदे में मिलाकर गोला बना लें। फिर उसमें तिल का तेल मिला चोट या मोचवाले स्थान को सेंकें। पुनः गर्म कर उसीको रोटी जैसा बनाकर बाँध दें तो भयानक-से-भयानक चोट और मोच ठीक हो जाती है। यह अत्यन्त चमत्कारी योग उस्ताद नन्हे पहलवान, इटावा से प्राप्त है, जो टूटी हड्डी को जोड़ने में बड़े ही दक्ष थे।

इस प्रसंग में चोट पर एक और अनुभूत प्रयोग है : एलुआ (एलोज) को शराब या टिंचर में घोलकर मन्द अग्नि पर गाढ़ा करके लेप करें। इससे सब प्रकार की चोट, दर्द मिट जाता है। यह भी उसी उस्ताद का बताया योग है।

४९. चित्रक

परिचय : १. इसे चित्रक (संस्कृत), चीता (हिन्दी), चिता (बंगला), चित्रमूल (मराठी), चित्रो (गुजराती) चित्तिर (तमिल), तेलचित्र (तेलुगु) शीतरज (अरबो) तथा प्लम्बेगो जेलेनिका (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा ४–६ फुट ऊँचा, गोल, पतला, कोमल, गाँठयुक्त काण्डवाला होता है। पत्ते गोल, लगभग ३ इञ्च लम्बे, १।। इञ्च चौड़े होते हैं। फूल सफेद रंग के बिना गन्ध के, गुच्छों में ४–१२ इञ्च लम्बे डंठल पर रहते हैं। फल फली के आकार के, लम्बे गोल, आवरणयुक्त होते हैं। जड़ अंगुली की तरह गुच्छल होती है। यह विशेषतः बंगाल, उत्तर-प्रदेश, दक्षिण भारत और लंका में प्राप्त होता है।

३. इसकी चार जातियाँ होती हैं : (क) श्वेत-चित्रक (अधिक प्राप्त, ऊपर वर्णित), (ख) रक्त-चित्रक (कम प्राप्त, अधिक गुणकारी), (ग) पीत तथा (घ) कृष्ण-चित्रक (व्यवहार में नहीं आता) ।

रासायनिक संघटन : इसमें कटु, पीला तत्त्व—प्लम्बेजिन अधिक-से-अधिक ०·९१ प्रतिशत मिलता है ।

गुण : यह स्वाद में चरपरा, पचने पर कटु तथा हल्का, रूखा, तीक्ष्ण और गर्म है । इसका पाचन-संस्थान पर अग्नि-दीपक रूप में मुख्य प्रभाव पड़ता है । यह विस्फोटजनक, नाड़ी-उत्तेजक, पाचक, कृमिहर, रक्तपित्त-प्रकोप का और कफ का हारक, स्वेदजनक तथा रसायन है ।

प्रयोग १. **अर्श-शोथ** : चीते की जड़ पीसकर उसे एक हाँड़ी में लेप कर दें । फिर उसमें गर्म दूध डालकर दही जमा दें । उस दही का मट्ठा बनाकर पीने से अर्श, संग्रहणी और सूजन में लाभ होता है । यह प्रयोग अनुभूत है ।

२. **अतिसार** : अतिसार में चीते का छाल मट्ठे में मिलाकर दें ।

३. **सिकता** : पेशाब में रेत जैसा पदार्थ आने पर चीते का काढ़ा थोड़ी मात्रा में पीयें ।

४. **व्रण** : यदि फोड़ा उठ रहा हो तो उस पर चित्रक का लेप करें । इससे फोड़ा बैठ या फूट जाता है । अधिक देर तक रखने से छाला पड़ जाता है । अतः इसमें सावधानी रखनी चाहिए ।

५०. जायफल

परिचय : १. इसे जातीफल, (संस्कृत), जायफल (हिन्दी), जायफल (बंगला), जायफल (मराठी), जायफल (गुजराती), जाथिकेई (तमिल), जाजिक्ये (तेलुगु), जौज़ुबुवा (अरबी) तथा मिरिस्टिका फ्रैगरेन्स (लैटिन) कहते हैं ।

२. इसका वृक्ष छोटा, सुहावना, हरा-भरा होता है। पत्ते ३–६ इञ्च लम्बे और १।। इञ्च चौड़े होते हैं। फूल छोटे, सफेद रंग के गोलाकार होते हैं। फल गोल, अण्डाकर तथा पकने और पुष्ट होने पर फट जाते हैं और भीतर से एक बीज निकलता है। बीज अण्डाकार गोल, एक इञ्च के घेरे में खाकीपन लिये होता है।

३. यह भारत के बाहर अधिक मिलता है। दक्षिण भारत में भी कहीं-कहीं पाया जाता है।

४. इसकी कई जातियाँ होतीं हैं। सामान्य रूप से जायफल नर और मादा दो प्रकार के मिलते हैं। इसकी लगभग ३० जातियाँ हैं। बीज पर स्थित पतले आवरण को सूखने पर 'जावित्री' कहते हैं।

रासायनिक संघटन : इसमें अपेलेर्टल आइल, प्रोटीड्स, फैट, स्टार्च, पिच्छिल द्रव्य, एश आदि पदार्थ मिलते हैं।

गुण : यह स्वाद में चरपरा, कड़वा, कसैला, पचने पर कटु तथा हल्का, चिकना, तीक्ष्ण और गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर ग्राही रूप में पड़ता है। यह शोथहर, पीड़ाशामक, दुर्गन्धनाशक, अग्निदीपक, वायु-अनुलोमक, कृमिघ्न, उत्तेजक, कफनिःसारक, आर्तव-जनक, रसायन कुष्ठहर, ज्वरहर तथा कटु पौष्टिक है।

प्रयोग १. अजीर्ण : जब मनुष्य को अजीर्ण के कारण प्यास, उबकाई होने लगे, तो जायफल का चूर्ण पानी में भिगोकर वह पानी पीने को दें। पुराने पतले दस्तों में जायफल का चूर्ण १ माशा चीनी मिलाकर दें। सुबह-शाम दूध में जायफल घिसकर चटाने से बच्चों की पाचन-शक्ति बढ़ती है तथा वे मोटे होते हैं।

२. **प्रमेह** : जायफल का चूर्ण पान या शहद में खाने से प्रमेह रोग मिटता है। और शक्ति आती है।

६. **गर्भाशय-शोथ :** जायफल की पोटली गर्भाशय पर रखने से गर्भाशय-शोथ दूर होता है ।

४. **मुखकृष्णता :** मुख पर काले धब्बे या मुँहासे होने पर जायफल को दूध में घिस-पीसकर लेप करें। इससे धब्बे मिटते हैं और चेहरा निखरता है।

५१. जीरा

परिचय : १. इसे जीरक (संस्कृत), जीरा (हिन्दी), जीरे (बंगला), जिरं (मराठी), जीरुं (गुजराती), जीरकम् (तमिल), जीलकरी (तेलुगु), कम्मन (अरबी) तथा क्युमिनम् सायमिनन् (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा १–३ फुट ऊँचा, सोया-जैसा होता है। पत्ते पंखे की तरह छोटे-छोटे होते हैं। फल लम्बे, छोटे, सफेद, कत्थई रंग के होते हैं।

३. यह प्रायः समस्त भारत में होता है। विशेषतः असम, बंगाल, राजस्थान में उत्पन्न होता है।

४. इसकी दो जातियाँ होती हैं। (क) जीरक (सफेद जीरा, ऊपर वर्णित)। (ख) कृष्णजीरक (काला जीरा–काबुली तथा देशी)।

रासायनिक संघटन : इसमें चिकना तेल, गोंद १२ प्रतिशत, म्युसिलेज प्रोटीन थायमीन नामक उड़नशील तेल होते हैं। काले जीरे में उड़नशील, सुगन्धित तेल मिलता है।

गुण : यह स्वाद में चरपरा, पचने पर कटु तथा हल्का, रूखा और गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर अग्निदीपक रूप में पड़ता है। यह शोथहर, शूलहर, रुचिकर, पाचक, कृमिनाशक, रक्तशोधक, मूत्रजनक, गर्भाशय-शोथहर, स्त्री-दुग्ध-शोधक तथा वर्धक, ज्वरहर तथा बलवर्धक है।

प्रयोग : १. **विषमज्वर-वातरोग** : जीरा गुड़ के साथ खाने से विषम-ज्वर तथा वातरोग दूर होता है। जीरे को गुड़ से खाकर ऊपर से मट्ठा पीकर धूप में बैठने से पसीना आता है तथा ज्वर-दर्द में लाभ होता है।

२. **कफपित्त** : जीरा २॥ तोला और धनिया २॥ तोला घी में पका-कर खाने से कफपित्त, अरुचि और मन्दाग्नि रोग दूर होते हैं।

३. **अर्श** : अर्श, ग्रहणी और उदरशूल में जीरा शहद के साथ दें। बवासीर के मस्सों के दर्द में इसे मिश्री के साथ दें। इससे रुका हुआ पेशाब भी खुल जाता है।

४. **स्त्रीरोग** : श्वेत-प्रदर अथवा दुग्ध की कमी में जीरा भूनकर चीनी के साथ दें। गर्भाशय-शुद्धि के लिए गुड़ के साथ जीरा लाभदायक है।

५. **मसाला** : भोजन में मसाले के तौर पर नित्यप्रति थोड़ा-सा जीरा लेने से बलवृद्धि होती तथा नेत्र-ज्योति बढ़ती है।

६. **नेत्ररोग** : जीरे को बारीक पीसकर सुरमे की तरह लगाने से नाखूना रोग दूर हो जाता है।

७. **शीतपित्त** : जीरे को उबालकर उस पानी से मुख धोने से मुख सुन्दर होता है। उसी पानी से नहाने से बदन की खुजली तथा शीतपित्त भी मिटता है।

८. **वृश्चिकदंश** : बिच्छू के काटने पर जीरे को पीसकर सेंधानमक और घी मिलाकर गर्म लेप करें।

५२. दारुहल्दी

परिचय : १. इसे दारुहरिद्रा (संस्कृत), दारुहल्दी (हिन्दी), दारु-हरिद्रा (बंगला), दारुहलुद (मराठी), दारुहलदर (गुजराती), मरमंजल (तमिल), कस्तूरीपुष्प (तेलुगु) तथा बर्बेरिस एरिस्टेटा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा हरा, काँटों से भरा झाड़नुमा होता है। पत्ते मजबूत, धारदार काँटों से युक्त, लट्टू के आकार के होते हैं। फूल पीले रंग के होते हैं। फूलों की मंजरी २-३ इञ्च लम्बी होती है। फल किशमिश की तरह नीलापन लिये लाल रंग के छोटे-छोटे होते हैं। तने की छाल अन्दर से गहरे पीले रंग की होती है।

३. यह हिमालय प्रदेश में २–१२ हजार फुट की ऊँचाई पर होती है।

४. इसकी १२-१३ जातियाँ मिलती हैं।

रासायनिक संघटन : इसकी जड़ तथा लकड़ी में पीले रंग का कड़वा एल्केनायड बर्बेरिन होता है।

गुण : यह स्वाद में कड़वी, कसैली, पचने पर कटु तथा हल्की, रूखी और गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर यकृत-उत्तेजक रूप में पड़ता है। यह शोथहर, पीड़ा-शामक, हल्की विरेचक, तृष्णा-शामक, रक्तशोधक, कफहर, गर्भाशय-शोथ-स्रावहर, स्वेदजनक, ज्वर-हर तथा कटु-पौष्टिक है।

प्रयोग : १. कामला : दारुहल्दी को पीसकर शहद के साथ देने से कामला ठीक होता है।

२. प्रमेह : १ सेर दारुहल्दी को १६ सेर पानी में उबालें। जब अष्ट-मांस जल-भाग रहे, तब छान लें। उसे २ सेर आँवले के स्वरस में धीरे-धीरे डालते हुए घोटें। पानी जल जाने पर वह ६ माशा से १ तोला तक मधु के साथ देने से समस्त प्रमेह दूर हो जाते हैं।

३. श्वेत प्रदर : श्वेत-प्रदर में दारुहल्दी की छाल के स्वरस को मधु के साथ देने से लाभ होता है। इसके क्वाथ से मुखरोग में भी लाभ होता है।

४. नेत्ररोग : दारुहल्दी के काष्ठ का चूर्ण बनाकर छान लें। उसमें

दूध मिलाकर पकायें। नेत्र पर इसका लेप करने से शोथ, लालिमा, वेदना आदि सब कुछ ठीक हो जाता है।

५३. धनियाँ

परिचय : १. इसे धान्यक (संस्कृत), धनियाँ (हिन्दी), धने (बंगला), धणे (मराठी), धाणा (गुजराती), कातामल्लि (तमिल), दान्लु (तेलुगु), कुज्वर (अरबी) तथा कोरिएण्ड्रम सेटाइवम् (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा एक वर्ष तक रहनेवाला और अनेक शाखाओं से युक्त तथा छोटा होता है। नीचे तथा ऊपर की पत्तियों की रचना में कुछ अन्तर रहता है। फूल बैंगनी रंग की झलक लिये सफेद होते हैं। फल छोटे, गोल-गोल, दो दालवाले होते हैं। ये ही सूख जाने पर धनिया तथा हरी अवस्था में पत्तियों की धनिया कहलाती है।

३. यह समस्त भारत में होती है। इसकी खेती की जाती है तथा जंगल में भी उग आती है।

रासायनिक संघटन : हरी धनिया में जल का अंश ८४ प्रतिशत होता है। फलों में उड़नशील तेल १ प्रतिशत, स्थिर तेल १३ प्रतिशत वसा १३ प्रतिशत, टेनिन, मैनिन एसिड तथा क्षार ५ प्रतिशत आदि पदार्थ मिलते हैं। तेल (कोरिएडर आइल) में कोरिएण्ड्रोल, जिरेतिओल तथा बबोर्निओल तत्त्व रहते हैं।

गुण : यह स्वाद में कसैली, कड़वी, मीठी, चरपरी, पचने पर मीठी, हल्की, चिकनी तथा गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर तृष्णाशामक (प्यास रोकने के) रूप में पड़ता है। यह शोथहर, शूल-शामक, मस्तिष्क-बलकारक, अग्निदीपक, उदर-कृमिनाशक, ग्राही, रक्तपित्त-शामक, हृदय-बलदायक, कफहर, मूत्रजनक, शुक्रक्षीणकर तथा ज्वरहर है।

प्रयोग : **१. रक्तातिसार** : धनिया १ तोला लेकर पीसकर उसमें मिश्री

१ तोला मिलाकर पीने से दस्त में रक्त आना रुक जाता है। धनिया में काला नमक उचित मात्रा में मिलाकर भोजन के पश्चात् लेने से खाने के बाद पाखाना जाने की आदत छूट जाती है।

२. **वमन** : वमन होने पर धनिया का थोड़ा-थोड़ा पानी दें।

३. **मूत्र-दाह** : यदि पेट, शरीर अथवा मूत्र में जलन होती हो तो १ तोला धनिया रात्रि में पानी में भिगो दें। सुबह उसे ठंढाई की तरह पीस-छानकर मिश्री मिलाकर सेवन करें।

४. **अनिद्रा** : नींद कम आने पर हरी धनिया पीस उसके स्वरस में चीनी और थोड़ा पानी मिलाकर लें। इससे नींद गाढ़ी आती है, आँखों के आगे अँधेरा आना और सिर-दर्द बन्द होता है।

५. **शिरःशूल** : धनिया के रस का सिर पर लेप करें तथा कुछ बूँदें आँखों में डालें तो शिरःशूल बन्द हो जाता है।

६. **छाले** : धनिया का चूर्ण मुख में छिड़कने से मुख के छालों में लाभ होता है।

७. **मासिक स्राव** : धनिया पीसकर चावल के पानी के साथ सेवन करने से मासिक धर्म के दिनों में अधिक रक्त आना बन्द हो जाता है।

८. **स्वप्न-दोष** : धनिया का चूर्ण मिश्री के साथ ठंडे जल से लेने से स्वप्न-दोष (नाइट फॉल), मूत्रदाह, सूजाक, उपदंश में लाभ होता है।

५४. धाय

परिचय : १. इसे धातकी (संस्कृत), धाय (हिन्दी), धाई (बंगला), धावस (मराठी), धावणी (गुजराती), धाथरीजगीं (तमिल), सिरीजी (तेलुगु) तथा बुडफोर्डिया फ्रुटिकोजा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा झाड़ी के आकार का, अनेक शाखाओंवाला होता है। पत्ते आमने-सामने, अनार के पत्तों जैसे, २–४ इंच लम्बे, बिना डंडल

के होते हैं। फूल डंठल पर चमकीले लाल रंग के संख्या में ५–१५ होते हैं। बीज कत्थई रंग के, पीलापन लिये चिकने होते हैं।

३. यह विशेषतः भारत के पहाड़ी प्रदेश में होती है।

रासायनिक संघटन : इसके फूलों में २० प्रतिशत कषाय द्रव्य (टैनिन) मिलता है।

गुण : यह स्वाद में कसैली, चरपरी, हल्की रूखी, शीतल तथा पचने पर कटु होती है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर स्तम्भक (दस्त या रक्तस्राव रोकने के) रूप में पड़ता है। यह व्रणरोपक (घाव भरनेवाली, संकोचक, कृमिहर, कफहर, मूत्रल, गर्भाशय-स्रावहर तथा चर्मरोगहर है।

प्रयोग १. प्रवाहिका : धाय के फूल और बेर के पत्ते पीसकर दही के साथ लेने से आमातिसार में लाभ होता है। ज्वर में दस्त हो तो धाय के फूलों का काढ़ा बना उसमें सोंठ और अनारदाने का चूर्ण २–२ माशा मिलाकर दें। इससे ज्वर और दस्त दोनों में लाभ होता है।

२. श्वेत-प्रदर : श्वेत-प्रदर में धाय के फूलों का काढ़ा चावल के धोवन के साथ लें।

३. व्रण : धाय और लोध बराबर पीसकर मिलाकर घावों पर लेप करने से व्रण-रोपण करता है।

५५. नागकेशर

परिचय : १. इसे नागकेशर (संस्कृत), नागकेसर (हिन्दी), नागेश्वर (बंगला), नागकेशर (मराठी), पीळ नागकेसर (गुजराती), बिल्‌ट्टचंपकम् (तमिल), नागपंचकमु (तेलुगु), मिस्कुरुम्मान (अरबी) तथा मेसुआ केरिया (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पेड़ सदा हरा-भरा होता है। शाखाएँ कोमल तथा छाल

ललाई लिये होती है। पत्ते २–६ इंच लम्बे, लगभग १।। इञ्च चौड़े, नुकीले, ऊपरी पृष्ठ पर चिकने और हर पृष्ठ के नीचे सफेदी लिये होते हैं। फूल ३–४ इंच के गोलाई में सुगन्धयुक्त बाहरी दल में कठोर और पीले रंग की केशरवाले होते हैं। फल लगभग १ इञ्च लम्बे और गोल होते हैं। फल में ही बीज १–४ संख्या में, कठिन, पीलापन लिये और सफेद रंग के होते हैं।

३. यह पूर्वी हिमालय प्रदेश, बंगाल, असम और दक्षिण भारत में होता है।

गुण : नागकेशर स्वाद में कसैला, कड़वा, पचने पर कटु तथा हल्का, रुक्ष तथा कुछ गर्म होता है। इसका मुख्य प्रभाव सर्व-शरीर पर रक्त-स्तम्भक (अर्श, अतिसार, रक्तपित्त, रक्तप्रदर में रक्त का स्तम्भन करनेवाला) रूप में पड़ता है। यह पीड़ाहर, दुर्गन्धनाशक, मस्तिष्क-बलदायक, अग्निदीपक, तृष्णा और वमन-शामक, कृमिहर, कफहर, मूत्रजनक, चर्मरोगहर, ज्वरहर, बलदायक, रक्तशोधक तथा विषहर है।

प्रयोग : १. रक्तार्श : मक्खन-मिश्री के साथ नागकेशर सेवन करने से खूनी बवासीर में लाभ होता है। इसे रात्रि को पानी में भिगोकर और प्रातःकाल छानकर शहद मिलाकर भी पिया जाता है। प्रवाहिका आदि में आमपाचन के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है।

२. अन्य रोग : संधिवात, रक्तपित्त तथा रक्तप्रदर में भी नागकेशर का प्रयोग लाभप्रद होता है।

५६. नागरमोथा

परिचय : १. इसे मुस्तक (संस्कृत), नागरमोथा, मोथा (हिन्दी), मुता (बंगला), नागरमोथा (मराठी), मोथ (गुजराती), मुथाकच (तमिल), तुंगगंदालाविम् (तेलगु), सोअदकूफी (अरबी) तथा सायपरस स्केरिओसस (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा १–३ फुट ऊँचा, घास की तरह होता है। पत्ते भी घास की तरह लम्बे होते हैं। फूलों का डंठल पौधे के अगले भाग से निकलकर १०-१२ शाखाओं में बँट जाता है। फल लम्बे-लम्बे लगते हैं। जड़ आधी इञ्च से एक इञ्च मोटी, काली तथा सुगन्धयुक्त होती है। यह सारे भारत में जलप्रधान नमी के स्थानों में मिलता है।

३. इसकी कई जातियाँ होती हैं : (क) नागर-मुस्तक (नागर-मोथा, ऊपर वर्णित) श्रेष्ठ। (ख) भद्रमुस्तक (कन्द, कुछ गोल)। (ग) कैवर्त-मुस्तक (केवरी मोथा, छोटा-सा कन्द)।

रासायनिक संघटन : इसकी जड़ में फैट, शर्करा, निर्यास, कार्बोहाइड्रेट, एल्ब्यूमिन, फाइबर्स, क्षार और अन्य सुगन्धित तत्त्व होते हैं।

गुण : यह स्वाद में चरपरा, कड़वा, कसैला, पचने पर कटु तथा हल्का, रूखा और शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर पाचक रूप में पड़ता है। यह चर्मरोगहर, वातनाड़ी-बलदायक, ग्राही, तृष्णा-शामक, कृमिहर, कफहर, मूत्रजनक, गर्भाशय-संकोचक, स्त्रीदुग्ध का शोधक एवं जनक, ज्वरघ्न, रेचक तथा बलकारक है।

प्रयोग : **१. अतिसार** : नागरमोथा की जड़ १ तोला, दूध २० तोला और पानी ६० तोला डालकर पकायें। जब दूध शेष रह जाय तो उसे पिलायें। इससे आमातिसार और मरोड़ (शूल) दूर होती है। पक्वातिसार में शहद मिलाकर दें।

२. हैजा : विशूचिका (हैजा) की प्यास में नागरमोथे की जड़ पानी में पकाकर वह पानी देने से प्यास मिटती है।

३. रक्तातिसार : इसकी जड़ पीसकर चावल के पानी के साथ देने से मल में रक्त आना रुक जाता है।

४. आगन्तुक व्रण : अकस्मात् चोट लगने या फोड़ा होने पर इसके बीज पीस गाय के घी के साथ मिलाकर लेप करें।

५७. निशोथ

परिचय : १. इसे त्रिवृत् (संस्कृत), निशोथ (हिन्दी), तेड़डी (बंगला), निशोतर (मराठी), नसोतर (गुजराती), शिवदैं (तमिल), तेगड़ (तेलुगु), तुर्बुद (अरबी) तथा ओपकर्गुलिना टर्पथम् (लैटिन) कहते हैं।

२. इसकी बेल ऊपर चढ़नेवाली, लम्बी, तिकोने काण्ड से युक्त होती है। पत्ते अण्डाकार, तिकोने आदि अनेक आकार के होते हैं। फूल सफेद बैगन के आकार के होते हैं। फल एक इञ्च लम्बा, गोल या अण्डाकार होता है। हर फल में काले रंग के ४ बीज होते हैं। जड़ मोटी, ललाई लिये सफेद रंग की होती है।

३. इसकी दो जातियाँ पायी जाती हैं : (क) श्वेत त्रिवृत् (सफेद निशोथ, ऊपर वर्णित)। (ख) कृष्ण त्रिवृत् (काली निशोथ)।

४. यह सम्पूर्ण भारत में ३ हजार फुट की ऊँचाई तक पायी जाती है।

रासायनिक संघटन : इसकी जड़ की छाल में टर्पोथिन नामक ग्लूकोसाइड, राल, उड़नशील तेल, रँगनेवाला द्रव्य, एल्ब्यूमिन, स्टार्च, लिगेनिन, लौह तथा कुछ अन्य लवण रहते हैं।

गुण : यह स्वाद में चरपरा, कड़वा, मीठा, कसैला, पचने पर कटु, हल्का, रूखा, तीक्ष्ण और गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर भेदक (दस्त लानेवाला) और सुख-विरेचक (पर्गेटिव) रूप में पड़ता है। यह शोथहर, मेदशोषक तथा ज्वरहर है।

प्रयोग १. ज्वर : निशोथचूर्ण ३–६ माशा, मुनक्का के साथ ज्वर में दें। तेज बुखार में शहद के साथ दें।

२. **रक्तपित्त :** रक्तपित्त में ३ माशा, निशोथ-चूर्ण १ तोला चीनी का शर्बत या मधु में मिलाकर दें।

३. अर्श : निशोथ-चूर्ण त्रिफला के साथ खाने से बवासीर में लाभ होता है।

४. कामला : कामला, पित्त-विकार में निशोथ-चूर्ण शर्करा के साथ दें।

५. अपस्मार : उन्माद, अपस्मार, वहम की बीमारी में इसका सेवन करें। इससे पहले दस्त होते हैं, फिर कफ बाहर निकलता और मस्तिष्क शुद्ध होता है।

सावधानी : इससे जी घबड़ाता है, अतः बादाम-रोगन के साथ दें। ऊपर से मुनक्का, शर्करा का शर्बत पीयें।

५८. नीबू

परिचय : १. इसे निम्बूक (संस्कृत), नीबू (हिन्दी), पातिलेबु (बंगला), लिंबू (मराठी), कागदी लींबू (गुजराती), एलुमिच्चै (तमिल) तथा साइट्रस मेडिका (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पेड़ छोटा होता है। पत्ते कुछ अण्डाकार होते हैं। फल छोटा तथा गोल होता है। नीबू की कई जातियाँ होती हैं। जैसे : जंबीरी नीबू, बिजौरा नीबू तथा मीठा नीबू। इसके पेड़ प्रायः समस्त भारत में पाये जाते हैं। विशेषतः हिमालय प्रदेश, बंगाल, असम तथा बम्बई प्रान्तों में मिलते हैं।

रासायनिक संघटन : फल के रस में ७–१० प्रतिशत साइट्रिक एसिड, फास्फेरिक एसिड, मैलिक एसिड, शर्करा आदि तथा एस्पेरेडिन नामक तिक्त ग्लूकोसाइड ५–८ प्रतिशत होता है।

गुण : इसका रस अम्ल, गुण में लघु तथा विपाक में मधुर है। यह तृष्णाशामक, दीपक, पाचक, हृदय-बलदायक, कफनिःसारक, स्वेदजनक तथा दाहशामक है।

प्रयोग : १. **अम्लपित्त** : नीबू का रस गर्म पानी में डालकर सायं-काल पीने से अम्लपित्त नष्ट हो जाता है। इससे मेदोरोग भी कम हो जाता है।

२. **मसूरिका** : नीबू का रस गुड़ मिलाकर लेने से मसूरिका (चेचक) नहीं होती। प्रायः गाय का दूध पीना चाहिए।

३. **दस्त-वमन** : नीबू के बीज शहद के साथ घिसकर देने से वमन, दस्त, हैजे में लाभ होता है। नीबू के अचार से भी हैजा तथा रोग-संक्रमण रुकता है।

४. **उदरशूल** : नीबू का रस १ सेर अदरक का रस १० तोला, नमक १० तोला, जीरा २॥ तोला और भूनी हुई हींग १ तोला मिला एक शीशी में रख दें। इसे ३ माशे से १ तोले तक देने से उदर-शूल बन्द होता है, तिल्ली (यकृत-वृद्धि) को लाभ पहुँचता है, भूख लगती तथा उदर के समस्त रोग दूर होते हैं। नीबू का रस शहद के साथ देने से पेट के रोग ठीक होते हैं तथा उदर-भेद कम होता है।

५. **बवासीर** : धारोष्ण दूध में नीबू का रस देने से बवासीर का रक्त आना बन्द होता है।

६. **अतिसार** : नीबू के रस को गर्म कर उसमें चीनी तथा छोटी इलायची पीस मिलाकर सेवन करने से अतिसार, वमन और अरुचि दूर हो जाती है।

७. **मलबन्ध** : नीबू का रस गर्म पानी के साथ रात्रि को लेने से दस्त खुलकर होती है।

८. **लाठी या बेंत की चोट** : नीबू काटकर उसमें हल्दी तथा नमक रख गर्म करके सेंक करने से बेंत अथवा लाठी की चोट निश्चय ही ठीक हो जाती है।

५९. पलास

परिचय १. इसे पलास (संस्कृत), पलास, ढाक (हिन्दी), पलास (बंगला), पळस (मराठी), खाखरो (गुजराती), मुरुक्कु (तमिल), मोदुग (तेलुगु) तथा ब्युटिआ फ्रांडोसा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पेड़ ४०–५० फुट ऊँचा होता है। काण्ड टेढ़ा तथा छाल फटी होती है। पत्ते तीन पत्रकों से युक्त, गोलाकार और प्रायः ४–६ इञ्च लम्बे होते हैं। फूल सुन्दर, लाल रंग के होते हैं। फली ५–८ इञ्च लम्बी, ३–४ इञ्च चौड़ी होती है। बीज फली में चपटे, गोलाकार, ललाई लिये कत्थई रंग के होते हैं। छाल में खुरच देने से गोंद जम जाता है।

३. यह भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में प्राप्त होता है।

रासायनिक संघटन : इसकी छाल तथा गोंद में काइनो टैनिक एसिड तथा गैलिक एसिड ५० प्रतिशत, चिकनी द्रव्य तथा क्षार २ प्रतिशत पाये जाते हैं। बीजों में काइनो-आइल नामक स्थिर तेल १८ प्रतिशत होता है।

गुण : यह स्वाद में चरपरा, कड़वा, कसैला, पचने पर कटु तथा हल्का, चिकना और गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर कृमिहर रूप में पड़ता है। यह शोथहर, पीड़ाहर, अग्निदीपक, यकृत-उत्तेजक, सन्धानीय (अस्थि जोड़नेवाला), ज्वरहर तथा बलकारक है।

प्रयोग : **१. अतिसार** : पलास फल के गूदे को ६ माशा गाय के दूध के साथ देने से अतिसार बन्द होता है।

२. **रक्तपित्त** : रक्तपित्त में पलास की छाल के स्वरस को घी में पीसकर शहद के साथ दें।

३. **कृमिरोग** : कृमिरोग में पलास-बीजों का काढ़ा, चूर्ण या पानी में पीसकर गोली बनाकर १–३ माशा गुड़ के साथ दें।

४. **गुल्म-प्लीहा** : पलास को त्वचा की भस्म पानी में भिगोकर पानी को निथार लें। फिर ऐसे १६ गुना पानी में २ तोला पीपल भिगोकर उसे धीरे-धीरे पका डालें। इन पीपलों का सेवन करने से गुल्म और प्लीहा मिटते तथा अग्नि दीप्त होती है।

५. **श्लीपद** : पलास की जड़ की छाल का स्वरस सरसों या एरण्ड के तेल के साथ लेने से श्लीपद मिटता है।

६. **रक्ताभिष्यन्द** : पलास-पुष्पों का रस निकालकर गाढ़ा कर आँखों में डालने से आखें आने पर लाभ होता है।

७. **रतौंधी** : रतौंधी में लाल फूलवाले पलास का रस सायंकाल आँखों में डालने से दो-तीन दिनों में रतौंधी दूर हो जाती है।

८. **नाल-परिवर्तन** : यदि किसीके लड़की ही लड़की होती हो तो पलास का एक पत्ता गाय के दूध के साथ पीसकर पिलायें। गर्भ-स्थापना के बाद तीसरे मास से छठे मास तक ऐसा करें। इससे निश्चय ही बलवान् सन्तान और वह भी लड़का पैदा होगा।

९. **वृश्चिकदंश** : पलास-बीजों को अर्क-क्षार में पीस लें और वृश्चिक-दंश स्थान पर रक्त निकाल उसका लेप करें तो विष शीघ्र उतर जाता है।

६०. पोदीना

परिचय : १. इसे पूतिहा (संस्कृत), पोदीना (हिन्दी), पुदिना (बंगला), पुदिना (मराठी), पुदीनो (गुजराती), पुदीना (तमिल), पुदीना (तेलुगु), फुदनज (अरबी) तथा मेन्था विरिडिस (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा एक वर्ष की आयुवाला, छोटा, सुगन्धयुक्त, घरों तथा बगीचों में पैदा किया जाता है। पत्ते दन्तुर, धारवाले, गहरे हरे रंग के और सुगन्धित होते हैं। फूल सफेद रंग के, कोमल डंठल पर गुच्छे के रूप में चारों ओर लगे रहते हैं।

छाल में कीड़ों से एक गोंद का निर्माण होता है। यही 'मोचरस' है। १-२ वर्ष की आयु के पौधों के मूल को 'सेमल मूसली' कहते हैं।

३. यह प्रायः भारत में सर्वत्र मिलता है। विशेषतः दक्षिण भारत के पहाड़ी स्थानों पर होता है।

रासायनिक संघटन : इसके बीजों में स्थिर तैल होता है। गोंद (मोचरस) में टैनिक एसिड तथा गैलिक एसिड मिलते हैं।

गुण : यह स्वाद में मीठा, कसैला, पचने पर मधुर कटु (मोचरस), हल्का, चिकना तथा शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव पाचन-संस्थान पर स्तम्भक (दस्त तथा रक्त रोकनेवाला) रूप में पड़ता है। यह वर्णजनक (रंग ठीक करनेवाला), दाहशामक, व्रणरोपक (घाव भरनेवाला), कासहर, मूत्रजनक तथा पौष्टिक है।

प्रयोग : १. **अतिसार** : एक माशा सेमल का गोंद दही के साथ लेने से दस्त बन्द हो जाते हैं।

२. **रसायन** : छोटे सेमल की १ तोला मुलायम जड़ पानी में भिगो दें। लुआब आने पर उसे निकाल, १ तोला मिश्री मिलाकर ४० दिन सेवन करें तो वह अत्यन्त पौष्टिक रसायन सिद्ध होता है।

३. **प्लीहा** : सेमल के फूलों को रात्रि में उबालकर रख दें। प्रातः उसमें ३ माशा राई मिलाकर खाने से बढ़ी तिल्ली मिटती है।

४. **रक्तपित्त** : सेमल के फूलों का चूर्ण मधु के साथ लेने से रक्त आना तुरन्त बन्द होता है।

५. **प्रदर** : सेमल के फूलों का शाक घी में भूनकर सेंधा नमक डालकर खाने से प्रदर मिटता है।

४. **प्रदर** : स्त्रियों के रक्त या श्वेतप्रदर में श्वेत चन्दन को घिसकर दूध में घोल शर्करा, मधु और घृत मिलाकर दें।

५. **हिचकी** : हिचकी आने पर स्त्री के दूध में चन्दन घिसकर नस्य दें।

६. **शिरःशूल** : पित्तज या कफज शिरःशूल में चन्दन में कर्पूर मिलाकर लेप करें।

७०. जामुन

परिचय : १. इसे जम्बू (संस्कृत), जामुन (हिन्दी), कालजाम (बंगला), जांभूळ (मराठी), जांबू (गुजराती), शंबु (तमिल) तथा यूजोनिया जेम्बोलाना (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष हरा-भरा और बड़ा होता है। पत्ते ३–६ इंच लम्बे, २-३ इंच चौड़े होते हैं। फूल श्वेत या हल्के पीले रंग के होते हैं। फल आधे से डेढ़ इंच लम्बे, अण्डाकार, कच्ची अवस्था में हरे तथा पक जाने पर बैंगनी रंग के होते हैं। इसकी कई जातियाँ होती हैं। यह भारत में सब प्रदेशों में होता है।

रासायनिक संघटन : इसके बीजों में एक ग्लूकोसाइड (जेम्बोलीन) इलैगिक एसिड पीला सुगन्धित तेल, वसा, राल, गैलिक एसिड, एल्ब्यूमिन आदि तत्त्व मिलते हैं।

गुण : यह रस में कषाय, मधुर, अम्ल तथा गुण में लघु, रूक्ष, शीतल है। यह स्तम्भक, दाह-प्रशामक, दीपक, छर्दिनिग्राहक, पाचक और मधुमेह तथा रक्तपित्त का नाशक है।

प्रयोग : १. **मधुमेह** : जामुन के फल की गिरी का चूर्ण ३–६ माशा में थोड़ा नमक मिलाकर या वैसे ही लेने से मधु, इक्षु या उद-मेह दूर होते हैं।

२. **वमन** : बमन में आम और जामुन के पत्तों का स्वरस पकाकर ठंडा करके दें।

३. **रक्तपित्त** : रक्तपित्त में जामुन, आम और अर्जुन के पत्तों का रस दें।

४. **रक्तातिसार** : रक्तातिसार में जामुन की छाल का चूर्ण दूध के साथ दें।

५. **प्रदर** : जामुन के फल की गुठली की गिरी का चूर्ण चावल के धोये पानी के साथ देने से प्रदर में अतिलाभ होता है।

६. **उदररोग** : छोटे जामुन के फलों का सिरका ३ माशा से १ तोला देने से उदरशूल, अजीर्ण, अग्निमांद्य, तिल्ली बढ़ने और यकृत-विकार में विशेष लाभ होता है।

७१. पुनर्नवा

परिचय : १. पुनर्नवा (संस्कृत), गदहपूरना, बिसखपरा (हिन्दी), पुनर्नवा (बंगला), घेटुली (मराठी), शती साटोडी (गुजराती), सुकुएट्टि (तमिल), आतातासामिरि (तेलुगु), हन्दकूकी (अरबी) तथा बार्हेबिया डिफगूजा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसकी बेल २-३ फुट लम्बी होती है। पत्ते लगभग १ इंच लम्बे, अण्डाकार, मांसल और रोयेंदार होते हैं। फूल छोटे, सफेद रंग के होते हैं। फल लगभग आध इंच लम्बे गोलाकर होते हैं। बीज चौलाई के बीजों की तरह होते हैं। जड़ मोटी, सफेद रंग की होती है। यह भारत के समस्त प्रान्तों में पायी जाती है।

३. यह दो प्रकार की होती है : (क) ऊपर वर्णित और (ख) लाल फूलवाली।

रासायनिक संघटन : इसमें पुनर्नबीन नामक एल्केलायड, पोटाशियम नाइट्रेट तथा स्नेहद्रव्य मिलते हैं।

गुण : यह स्वाद में मीठा, कड़वा, कसैला पचने पर मधुर तथा हल्का, रूखा एवं गर्म है। लाल पुनर्नवा पचने पर कटु तथा शीतल होता है। इसका मुख्य प्रभाव मूत्रवह-संस्थान (यूरीनरी सिस्टम) पर मूत्रल (मूत्र लानेवाला) रूप में पड़ता है। यह मेदोहर, शोथहर, अग्निदीपक, विरेचक, हृदय-बलकारक, रक्तवर्धक, कासहर, चर्मरोगहर, ज्वरहर, विषहर तथा रसायन है।

प्रयोग : १. **शोथ :** पुनर्नवा की जड़ ६ माशा से १ तोला लेकर सोलहगुना पानी में काढ़ा करें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर सोंठ का चूर्ण २ माशा मिलाकर पीयें। इससे शोथ दूर होता है। पुनर्नवा से वृक्क को कुछ भी त्रास न होकर मूत्र का प्रमाण दूना होता है, हृदय-संकोचन बढ़ता है लौर धमनियों में रक्त तेजी से चलने लगता है। इसका प्रभाव शोथ पर पड़ता तथा सूजन दूर हो जाती है।

२. **स्तनविद्रधि :** स्तन के फोड़े पर पुनर्नवा की जड़ को मट्ठे में पीसकर लेप करें।

३. **नेत्ररोग :** नेत्रों की खुजली में इसे दूध में घिसकर लगायें। पानी आने पर शहद में घिसकर लगायें। नेत्र में फुल्ली होने पर घी में, तिमिर-रोग में तेल में और रतौंधी में कौड़ी के साथ घिसकर लगायें।

४. **छाले :** मुख में छाले होने पर इसकी जड़ दूध में घिसकर लगायें।

७२. वरुना (वरुण)

परिचय : १. इसे वरुण (संस्कृत), वरुना (हिन्दी), वरुण (बंगला), हाडवर्णा (मराठी), वरणे (गुजराती), मार्विलिंगम् (तमिल), उरुमत्ति (तेलुगु) तथा क्रेटिला रेलिगिओसा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पेड़ बड़ा होता है। छाल पीली-कत्थई रंग की, चीरेवाली होती है। पत्ते बेल के पत्तों की तरह तीन पत्रकों से युक्त होते हैं। फूल २–३ इञ्च लम्बे, नीलापन लिये, सफेद पीले रंग के, सुगन्धयुक्त होते हैं। फल नीबू के समान गोल और बड़े, हरे रंग के, पीले गूदेवाले तथा पकने पर लाल रंग के होते हैं।

रासायनिक संघटन : इसकी छाल में सैपोनीत नामक तत्त्व मिलता है।

गुण : यह स्वाद में कड़वा, मीठा, कसैला, पचने पर कटु तथा हल्का, रूखा, गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव मूत्रवह-संस्थान पर अश्मरी-भेदक (मूत्राशयगत पथरी को तोड़कर बाहर निकालनेवाला) रूप में पड़ता है। यह ग्रन्थिशोथहर, व्रणरोपक, अग्निदीपक, यकृत-विकारहर, शूलहर, कृमिहर, ज्वरहर तथा बलदायक है।

प्रयोग : १. अश्मरी : वरुण-मूल की छाल का काढ़ा बनाकर उसे कल्कसमेत देने से पथरी निकल जाती है।

२. अन्तर्विद्रधि : उदर-गुहा में किसी प्रकार फोड़ा होने पर वरुणमूल की छाल का क्वाथ देने से फोड़ा बैठ जाता है। यह चिकित्सा फोड़े की अपक्व-अवस्था में निश्चित लाभ देती है। छाल की मात्रा ३–६ माशा है। शहद डालकर इसका क्वाथ गण्डमाला में भी लाभप्रद होता है।

३ अर्श : वरुण के पत्तों को उबालकर सेंक करने से बवासीर के मस्सों का दर्द शान्त हो जाता है। इसे बाँधना नहीं चाहिए। देर तक बाँधने से जलन पैदा होती है।

४. किक्कस : गर्भवती स्त्रियों के पेट और जंघाओं पर लम्बी-लम्बी लाल रेखाएँ हो जाने पर वरुण के पत्तों को पानी में पीसकर उबटन करें।

५. व्रण : फोड़ा बैठाने तथा पकाने के लिए वरुण की छाल और पत्तों का गर्म लेप करना चाहिए। ●

प्रजनन-संस्थान प्रभावक वर्ग | ६

७३. अशोक

परिचय : १. इसे अशोक (संस्कृत), अशोक (हिन्दी), अशोक (बंगला), अशोक (मराठी), अशोक (गुजराती), अशोकम् (तमिल), अशोकमु (तेलुगु) तथा सराका इंडिका (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पेड़ आम की तरह २५-३० फुट ऊँचा होता है। पत्ते ३–६ इंच लम्बे, आम के पत्तों की तरह होते हैं। कोमल पत्ते ताँबे के रंग के होते हैं। फूल गुच्छों में, सुगन्धयुक्त पीलापन लिये लाल होते हैं। फली ६–१० इंच लम्बी, १॥-२ इंच चौड़ी-चपटी होती है। इसमें लम्बे, चपटे बीज ४–८ की संख्या में रहते हैं।

रासायनिक संघटन : इसकी छाल में मैटाक्सिलिन नामक तत्त्व, अधिक मात्रा में टैनिन तथा कैटेचिन पाये जाते हैं।

गुण : यह स्वाद में कसैला, कड़वा, पचने पर कटु तथा हल्का, रूखा, शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव स्त्री-प्रजनन-संस्थान पर आर्तव-शमन रूप में पड़ता है। यह पीड़ाहर, विषहर, कृमिनाशक, तृष्णाशामक, स्तम्भक, शोथहर, गर्भाशय-संकोचक, मूत्रजनक तथा दाहशामक है।

प्रयोग : १. स्त्रीरोग : रक्तस्राव अधिक होने या अनियमित होने पर अशोक की छाल को दूध में पकाकर देने से लाभ होता है तथा गर्भाशय-

शोथ और वेदना दूर होती है। रक्तस्राव अधिक होने या घाव हो जाने पर अशोक की छाल के काढ़े की पिचकारी द्वारा प्रक्षालन करें।

७४. अश्वगन्धा (असगन्ध)

परिचय : १. इसे अश्वगन्धा (संस्कृत), असगन्ध (हिन्दी), अश्वगन्धा (बंगला), आसंध (मराठी), घोड़ा आहन (गुजराती), आमकुलांग (तमिल), पिनिस (तेलुगु) तथा वाइथनिया साम्पिफेथ (लैटिन) कहते है।

२. इसका पौधा १-५ फुट ऊँचा और शाखाएँ चारों ओर फैली होती हैं। पत्ते २-४ इंच लम्बे, गोलाई लिये, कुछ सफेद, रोंयेदार होते हैं। फूल पीलापन लिये हरे रंग के, गुच्छों में आते हैं। फल छोटे, गोलाकार, रसभरी की तरह भीतर पतली झिल्लीवाले होत हैं, जो पकने पर लाल हो जाते हैं। फलों में छोटे और चिपटे बीज रहते हैं। जड़ ऊपर से पीलापन लिये कत्थई, अन्दर से सफेद, अँगुली जैसी मोटी, लम्बाई में १-१॥ फुट तक होती है।

३. यह भारत में प्रायः सब जगह मिलता है।

रासायनिक संघटन : जंगली असगन्ध की जड़ में सोम्नेफेरीन नामक एल्केलायड तथा खेती द्वारा उत्पन्न असगंध में शर्करा, फैट, रेजिन तथा कुछ रंजकद्रव्य मिलते हैं।

गुण : यह स्वाद में मीठा, कसैला, कड़वा, पचने पर मधुर तथा हल्का, चिकना, गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव सर्वशरीर पर रसायन रूप में पड़ता है। यह शोथहर, पीड़ाहर, पीड़ाशामक, नाड़ी-बलकारक, अग्निदीपक, कृमिहर, हृदय-बलकारक, रक्त-शोधक, कफहर, रसायन, गर्भाशय-शोथहर, मूत्रजनक, चर्मरोगहर, बलदायक तथा क्षयहर है।

प्रयोग : १. श्वास : अश्वगन्धा-मूल ३ माशा और जवाखार २ रत्ती पीसकर शहद एवं घी के साथ देने से श्वास में लाभ होता है।

२. **क्षय** : अश्वगन्धा-मूल ३ माशा और पिप्पली-चूर्ण १ माशा घी-शहद के साथ देने से क्षय रोग में लाभ होता है।

३. **वातव्याधि** : अश्वगन्धा-मूल का काढ़ा चौगुने पानी में पका घी मिलाकर लेने से सम्पूर्ण वातरोग दूर हो जाते हैं। अश्वगन्धामूल का चूर्ण ३ माशा, सोंठ ३ माशा और मिश्री ६ माशा मिलाकर गर्म दूध के साथ लेने से कमर-दर्द, शरीर-दर्द दूर हो जाता तथा वीर्य, मांस एवं बलवृद्धि होती है।

४. **कृमिरोग** : अश्वगन्धा-मूल को गोमूत्र में पीसकर लेने से उदर-कृमि मिट जाते हैं।

५. **शिशु-दौर्बल्य** : अश्वगंधा-मूल का चूर्ण प्रकृति के अनुसार दूध, घी या तेल के साथ देने से बच्चे मोटे और बलवान् होते हैं।

६. **अनिद्रा** : अश्वगन्धा-मूल का चूर्ण ३ माशा, मक्खन ६ माशा और मिश्री ६ माशा मिलाकर लेने से निश्चय ही निद्रा आती है।

७. **फोड़ा-ग्रन्थि** : अश्वगन्धा-पत्रों को घी या तेल चुपड़कर गर्म कर बाँधने से फोड़े की ग्रन्थि बैठ जाती है।

८. **रसायन** : ६ माशा अश्वगन्धा-चूर्ण, १ तोला घी-मधु के साथ देने से वृद्ध युवावत् पुरुषार्थी बन जाता है।

सावधानी : उष्ण प्रकृतिवाले इसका अधिक सेवन न करें।

७५. कलिहारी

परिचय : १. इसे लांगली (संस्कृत), कलिहारी (हिन्दी), उलट-चंडाल (बंगला), कललावी (मराठी), दुधियो बछनाग (गुजराती), कताई-पाई-कि-जंगु (तमिल), आदाविनामि (तेलुगु) तथा ग्लोरि-ओजा सुपर्बा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा सुन्दर, लताकार, लगभग १०-१२ फुट तक लम्बा

होता है। पत्ते बिना डंठल के ६–८ इञ्च लम्बे, अगले भाग पर धागे की तरह होते हैं। उनके सहारे यह पेड़ पर चढ़ सकती है। फूल ३-४ इञ्च लम्बे, नीचे की ओर पीले तथा ऊपर की ओर लाल, अग्नि के रंग के समान होते हैं। जड़ आलू के समान गोल या चपटी, मुलायम लगभग १ इञ्च मोटी होती है।

३. यह बंगाल और दक्षिण भारत में अधिक उत्पन्न होती है।

रासायनिक संघटन : इसके कन्द में दो प्रकार के रेजिन, टेनिज पदार्थ, सुर्पाविन नामक एक कड़वा तत्त्व, ग्लोरिओजिन नामक एल्केलायड तथा स्टार्च मिलता है।

गुण : यह स्वाद में चरपरी, कड़वी, पचने पर कटु तथा हल्की, तीक्ष्ण, गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव स्त्री-प्रजनन-संस्थान (फीमेल जेनीटियल सिस्टम) पर संकोचक रूप में पड़ता है। यह क्षोभक, रक्त उत्बणकारक, कृमिनाशक, अग्निदीपक (कम मात्रा में), वामक रेचक (अधिक मात्रा में), रक्तशोधक, विषमज्वरहर, बलकारक तथा रसायन है।

प्रयोग : १. वात-रोग : वातरोगों में कलिहारी की जड़ को तेल में पकाकर उससे मालिश करें।

२. **फोड़ा** : फोड़े के मुख पर इसकी जड़ का लेप करने से फोड़े का मुख बढ़ जाता है तथा पीप, काँच या काँटा बाहर निकल जाता है।

७६. कौंच

परिचय : १. इसे कपिकच्छू (संस्कृत), कौंच (हिन्दी) आलकुशी (बंगला), खाजकुहिती (मराठी), कौंचा (गुजराती), पुनाइक काली (तमिल), नइक कोरान (तेलुगु) तथा म्युकुना मुरिएन्स (लैटिन) कहते हैं।

२. इसकी बेल सेम के समान होती है। पत्ते ३-५ इञ्च लम्बे, तीन पत्तियोंवाले, सेम के समान, रोयेंदार होते हैं। फूल १-१॥ इञ्च लम्बे,

नीले या बैंगनी रंग के, आधा से एक फुट तक डंठल पर आते हैं। फली २-३ इञ्च लम्बी, टेढ़ी, ऊपर घने रोमवाली होती है तथा अन्दर पीलापन लिये सफेद या काले-चपटे ५-६ बीज होते हैं।

३. यह भारत के समस्त गर्म प्रान्तों में होता है।

रासायनिक संघटन : इसके बीजों में रेजिन, टैनिन, चिकना भाग तथा कुछ मैंगनीज मिलते हैं।

गुण : यह स्वाद में मीठा, कड़वा, पचने पर मधुर तथा भारी, चिकना है। इसका मुख्य प्रभाव प्रजनन-संस्थान पर शुक्रजनक रूप में पड़ता है। यह वातनाड़ी-बलकारक, कृमिनाशक, शक्तिवर्धक, मूत्रजनक, बलकारक, रस, रक्त आदि धातुवर्धक तथा रसायन है।

प्रयोग : १. **वातव्याधि :** वातव्याधि में कौंच की जड़ का काढ़ा पीने से सब प्रकार के दर्द दूर हो जाते हैं।

२. **वृक्कशोथ :** यदि गुर्दों में सूजन हो तो कौंच की जड़ का काढ़ा बनाकर दें। इससे नाड़ियों को ताकत मिलती है और मूत्र भी खुलकर आने लगता है।

७७. गूलर

परिचय : १. इसे उदुम्बर (संस्कृत), गूलर (हिन्दी), यज्ञडुम्बुर (बंगला), उंबर (मराठी), उमरडो (गुजराती), खारसा, (तमिल), राइगा (तेलुगु) तथा फाइकस ग्लोमैरटा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसके पेड़ ३०–४० फुट ऊँचे होते हैं। छाल ललाई लिये कत्थई रंग की होती है। पत्ते ३–४ इञ्च लम्बे, अगले भाग पर नुकीले होते हैं। फल हरे तथा पकने पर लाल हो जाते हैं।

३. यह भारत में सर्वत्र होता है।

रासायनिक संघटन : इसमें टेनिन, मोम तथा भस्म आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

गुण : यह स्वाद में कसैला, मधुर, गुण में गुरु, रूक्ष, शीतल तथा कफपित्तहर है। यह शोथहर, कफहर, वेदनास्थापक, रक्तपित्तशामक, गर्भाशय-शोथहर और दाहप्रशामक है।

प्रयोग : १. मधुमेह : गूलर की जड़ को जमीन में ही बिना तोड़े छीलने पर पानी निकलता है। उस पानी को ३ माशा से १ तोला तक लेकर पिलायें तो मधुमेह (शूगर) रुकता है।

२. रक्तस्राव : किसी स्थान से रक्त बहने और शोथ होने पर गूलर की छाल का काढ़ा दें।

३. प्रदर : स्त्रियों के रक्त-श्वेत प्रदर में गूलर की छाल का काढ़ा बहुत लाभ करता है।

४. गर्भस्राव : तीसरे महीने तक गर्भ गिर जानेवाली स्त्रियों को गूलर के कच्चे फलों को दूध में पकाकर खाना चाहिए। अथवा कच्चे फलों को छाया में सुखा पीसकर मिश्री मिलाकर ६ माशा से १ तोला तक दूध के साथ प्रातः देना चाहिए।

५. बालशोथ (सुखण्डी) : गूलर का दूध ५-६ बूँद दूध में मिलाकर पिलाने से बच्चों के सूखारोग, दाँत निकलने के कष्ट, वमन, दस्त, ज्वर में निश्चय ही लाभ होता है।

६. फोड़ा : संधिस्थान पर फोड़ा निकलने पर गूलर का दूध रूई पर लगाकर चिपकाने से फोड़ा बैठ जाता है।

७. धातुपुष्टि : गूलर के दूध की १०–२० बूँदें बताशे या छुहारे में भरकर खाने से धातुपुष्टि होती है।

७८. चोपचीनी

परिचय : १. इसे द्वीपान्तर बचा (संस्कृत), चोपचीनी (हिन्दी),

तोपचीनी (बंगला), चोपचीनी (मराठी-गुजराती), परंमिचैक्काई (तमिल) तथा स्माइलेकस ग्लेब्रा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसकी बेल फैलनेवाली होती है। पत्ते अण्डाकार होते हैं। फूल छोटे, सफेद रंग के होते हैं। जड़ मोटी, भारी तथा लाल रंग की होती है।

३. इसका मूलस्थान चीन तथा जापान है। आजकल असम आदि में भी पैदा की जाती है।

रासायनिक संघटन : इसकी जड़ में वसा, शर्करा, गोंद, स्टार्च, सैपोनिन, ग्लूकोसाइड तथा रंजक-द्रव्य मिलते हैं।

गुण : यह रस में कड़वी, गुण लघु, रूक्ष, उष्ण तथा त्रिदोषहर है। यह शोथहर, दीपक, रक्तशोधक, शुक्रशोधक, मूत्रल, कुष्ठघ्न तथा कटु पौष्टिक है।

प्रयोग : १. रक्तविकार : वातरक्त : २-३ माशा चोपचीनी-चूर्ण दूध या शहद के साथ देने से वातरक्त, अँगुलियों में सूजन, दर्द, फिरंग, दाद, खाज दूर होती है।

२. मानसिक रोग : चोपचीनी का चूर्ण या अवलेह देने से बल बढ़ता, बुद्धि-विभ्रम, शिरःशूल, अर्धावभेदन, उन्माद, कम्पबाहु में लाभ होता है।

३. स्त्री-रोग : इसके सेवन से गर्भाशय की शिथिलता दूर होती है।

७९. विधारा (वृद्धदारुक)

परिचय : १. इसे वृद्धदारुक (संस्कृत), विधारा (हिन्दी), बिज-ताड़क (बंगला), समुद्रशोष (मराठी), समंदर शोष (गुजराती), समुद्रशोष (तमिल), समुद्रपेला (तेलुगु) तथा आर्टिजिया स्पेसिओजा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसकी बेल लम्बी फैलनेवाली, काण्ड में गोलाकार और कठिन होती है। पत्ते ४–१२ इञ्च लम्बे, अधिक चौड़े, पान के पत्तों की तरह

और नुकीले होते हैं। फूल भण्टे की तरह, बाहर के दल में सफेद और अन्दर के दल में बैंगनी या गुलाबी रंग के होते हैं। फल १ इञ्च लम्बे, लम्बाई लिये गोल, कच्ची अवस्था में हरे तथा पकने पर पीलापन लिये कत्थई रंग के होते हैं। बीज तीन धाराओं से युक्त, सफेद और भूरे होते हैं, जो फल के पकने पर बहुत लाभप्रद होते हैं।

३. यह सब जगह बाग-बगीचों में लगायी जाती है।

रासायनिक संघटन : इसमें टैनिन तथा अम्लराल पदार्थ मिलते हैं।

गुण : यह स्वाद में चरपरी, कड़वी, कसैला, पचने पर मधुर तथा हल्की, चिकनी, गर्म होती है। इसका मुख्य प्रभाव सर्वशरीर पर रसायन रूप में पड़ता है। यह व्रण की शोधक-रोपक, मस्तिष्क और नाड़ी-बलदायक, अग्निदीपक, वातानुलोमक, हृदयबलदायक, शोथहर, कफहर, शुक्रजनक, गर्भाशय-शोथहर, प्रमेहहर, बलदायक तथा अर्शनाशक है।

प्रयोग १. **दौर्बल्य** : इसकी जड़ का चूर्ण ३–६ माशा की मात्रा में दूध के साथ लेने से शरीर की दुर्बलता, मेधाशक्ति की दुर्बलता, प्रदर तथा वातरोगों का नाश होता है।

२. **अन्य रोग** : व्रणशोथ पर पत्र (नीचे के वृक्ष से) बाँधते हैं। मूल का चूर्ण ३–६ माशा की मात्रा में लेने से उदर-शुद्धि हो जाती है।

८०. लाजवन्ती

परिचय : १. इसे लज्जालु (संस्कृत), लाजवन्ती (हिन्दी), लाजक (बंगला), लाजाळु (मराठी), रीसामणि (गुजराती), तोट्टच्युरंजी (तमिल), मनुगुदा (तेलुगु) तथा माइयोसा प्युडिका (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा काँटेदार और १–४ हाथ ऊँचा होता है। एक लम्बे डंठल से चार छोटे डंठल (हथेली की उँगलियों की तरह) निकले रहते हैं। पत्रक कत्थे के पत्तों के समान, एक छोटे डंठल के दोनों ओर लगे रहते हैं। ये छूने से मुरझा जाते हैं। फूल के डंठल पर गुलाबी रंग के

रूई के समान, मुलायम फूल लगते हैं। फली लगभग आधा इञ्च लम्बी होती है। फली में ३-४ बीज रहते हैं।

३. यह भारत में सब जगह, विशेषतः उष्ण प्रदेशों में मिलती है।

रासायनिक संघटन : इसकी जड़ में टैनिन १० प्रतिशत तथा ऐंश (भस्म) ५५ प्रतिशत होती है।

गुण : यह स्वाद में कसैला, कड़वी, पचने पर कटु तथा हल्की, रूखी, शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव सर्वशरीर पर सन्धानीय (अस्थियों के तथा धातुओं के तोड़-फोड़ को जोड़नेवाला) रूप में पड़ता है। यह रक्तस्तम्भक, व्रणरोपक, रक्तशोधक, शोथहर, प्रमेहहर तथा विषहर है।

प्रयोग : १. रक्त को रोकना : रक्तमिश्रित आँव, खूनी बवासीर, वमन के साथ रक्त आना इन रोगों में लाजवन्ती की जड़ का काढ़ा देना चाहिए। पत्तियों का चूर्ण भी लाभ करता है।

२. **रक्तप्रदर-प्रमेह** : रक्तप्रदर और प्रमेह में भी इसका प्रयोग करते हैं।

८१. लोध

परिचय : १. इसे लोध्र (संस्कृत), लोध (हिन्दी), लोध (बंगला), लोध्र (मराठी), लोधर (गुजराती), वेल्लि-लोढ़ि (तमिल), लोधुग-चेट्टु (तेलुगु) तथा सिम्प्लोकस रेसियोसा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष सदा हरा-भरा, मध्य आकार का होता है। पत्ते लंबे, गोलाकार, ३-५ इंच लंबे होते हैं। फूल पीलापन लिये सफेद रंग के, २–४ इंच लंबे डंठल पर रहते हैं। फूल लगभग आधा इञ्च लंबा, कड़ा और गोलाकार होता है। छाल हल्के लाल रंग की होती है।

३. यह उत्तर तथा पूर्व भारत में विशेष रूप से उत्पन्न होता है।

रासायनिक संघटन : इसकी छाल में लाट्युरीन, 'कोलाट्युरीन, लाट्युरिडिन, क्विनोविन नामक एल्केलायड पाये जाते हैं।

गुण : यह स्वाद में कसैला, पचने पर कटु तथा हल्का, रूखा, शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव स्त्री-प्रजनन-संस्थान (जेनीटियल सिस्टम) पर आर्तवशमन रूप में पड़ता है। यह कर्ण-दन्त-नेत्र को लाभकर, शक्तिवर्धक, शुक्रवर्धक, गर्भाशयशोथहर, रक्तशोधक, कफहर तथा व्रणरोपक है।

प्रयोग : **१. स्त्री-रोग** : श्वेत-प्रदर, रक्त-प्रदर, अत्यार्तव में लोध्रचूर्ण २-४ माशा दूध या पानी के साथ देने से लाभ होता है। गर्भवती स्त्री के ७वें या ८वें मास में गर्भ का विशेष परिचलन होता है। उस समय लोध्र-चूर्ण शहद के साथ देने से गर्भ स्थिर रहता है।

२. अतिसार : लोध्र-चूर्ण २-३ माशा दही के साथ देने से अतिसार या रक्तातिसार में लाभ होता है।

३. नेत्र-रोग : नेत्रों में सूजन या लालिमा होने पर लोध्र को पानी में घिसकर नेत्रों के ऊपर लगायें।

४. व्रण : फोड़े-फुन्सी अधिक होने पर इसका चूर्ण बनाकर खिलायें।

५. कर्णस्राव : कान से पानी या पीप या कान बहने पर लोध्र का बारीक चूर्ण कान में डालें।

८२. विदारीकन्द

परिचय : इसे विदारी (संस्कृत), विदारीकन्द (हिन्दी), शिमिया (बंगला), बेंदरिया वेल (मराठी), खाखरबेल (गुजराती) तथा प्युरेरिया ट्युबरोसा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसकी बेल बहुत दूर तक फैलनेवाली और मोटी होती है। पत्ते ढाक के समान तीन छोटे पत्तों (पत्रक) से मिलाकर बने, ४-६ इञ्च लंबे और ३-४ इञ्च चौड़े, नुकीले और निचले पृष्ठ पर रोयेंदार होते हैं। ६-१८ इञ्च लम्बी फूलों की मंजरी पर बैंगनी रंग के छोटे फल लगते हैं। फली २-३ इञ्च लम्बी, रोयेंदार होती है। जड़ में १-१॥ फुट लम्बे, १ फुट मोटे तथा इससे कभी-कभी काफी बड़ी आकृति के कन्द निकलते हैं।

३. यह हिमालय प्रदेश की निचली पहाड़ियों, बंगाल, असम, पंजाब आदि प्रान्तों में मिलता है।

रासायनिक संघटन : इसके कन्द में रेजिन, शर्करा तथा अधिकांश भाग में स्टार्च होता है।

गुण : यह स्वाद में मीठा, पचने पर मधुर तथा भारी, चिकना, शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव सर्वशरीर पर बलदायक रूप में पड़ता है। यह यकृत, प्लीहा, त्वचा, कण्ठ और हृदय को लाभकर, वातानुलोमक, कफनिःसारक, मूत्रजनक, दाहप्रशामक, ज्वरहर तथा रसायन है।

प्रयोग : १. शारीरिक शिथिलता (भाराल्पता) : विदारीकन्द पित्तसारक, आनुलोमिक एवं उत्तम पौष्टिक पदार्थ है। इसका चूर्ण १-२ तोला, घी और मधु में मिलाकर देने से बल और वजन बढ़ता है।

२. पित्तशूल-प्लीहा-यकृतविकार : विदारीकन्द का स्वरस शर्बत के साथ देने से पित्तस्राव होता है। इससे दस्त साफ होता, शूल बन्द होता तथा प्लीहा एवं यकृत की क्रिया सुधरती है।

३. स्तन्यवृद्धि : इसका चूर्ण ६ माशा, चावल का आटा ६ माशा, मिश्री ६ माशा दूध के साथ देने से स्त्रियों के स्तनों में बहुत दूध आने लगता है।

८३. शतावरी

परिचय : १. इसे शतावरी (संस्कृत), शतावर (हिन्दी), शतमूली (बंगला), शतावरी (मराठी), शतावरी (गुजराती), संडावरी (तमिल), चल्ला (तेलुगु) तथा एस्पेरेगस रेसिमोसस (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा काँटेदार बेल की तरह होता है। शाखाएँ तिकोनी, काण्डवाली और चिकनी होती हैं। पत्ते पतले और सूक्ष्म, सोये के समान, छोटे, टढ़े और काँटों से युक्त होते हैं। पत्ते की तरह लगनेवाले काण्ड आधे से एक इञ्च लम्बे, २-६ गुच्छों में रहते हैं। फूल सफेद या गुलाबी,

सुगन्धयुक्त, छोटे, अनेक शाखाओंवाले डंठल पर लगते हैं। फल मटर के समान १-२ बीजयुक्त होते हैं। जड़ में लम्बा-गोल, नुकीली, सफेद गुच्छा आता है।

३. यह भारत में सब जगह, विशेष रूप से उत्तर भारत की भूमि में खूब मिलती है।

गुण : यह स्वाद में मीठी, कड़वी, पचने पर मधुर, भारी, चिकनी, शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव पुं०-प्रजनन-संस्थान (मेल जेनीटियल सिस्टम) पर बल-वीर्यवर्धक रूप में पड़ता है। यह नाड़ी और मस्तिष्क के लिए बलकारक, पीड़ाशामक, अग्निदीपक, शूलहर, हृदय-बलदायक, रक्तपित्तहर, शोथहर, गर्भपोषक, स्त्री-दुग्ध-जनक, नेत्र और सिर को लाभकर तथा रसायन है।

प्रयोग : **१. मूत्रमार्ग से रक्त-स्राव** : शतावरी और गोखरू दोनों का काढ़ा ठंडा करके देने से या शतावरी को पानी या दूध के साथ देने से भी शीघ्र लाभ होता है।

२. स्तन्यवृद्धि : ६ माशा शतावरी-चूर्ण दूध के साथ देने से दुग्ध-वृद्धि होती है।

३. वन्ध्यादोष : ६ माशा शतावरी-मूल का चूर्ण १ तोला घी और दूध के साथ खाने से गर्भाशय की सब विकृतियाँ दूर होती और गर्भ-स्थापन होता है।

४. तिमिर : शतावरी-चूर्ण ६ माशा दूध के साथ या दूध में पकाकर खाने से नेत्र-दृष्टि ठीक होती तथा आँखों के आगे जाले दीखना बन्द हो जाता है।

५. रक्तपित्त : मुख या नाक से रक्त आने पर शतावरी-जड़ को दूध में पकाकर देने से लाभ होता है।

६. रसायन : शतावरी चूर्ण को दूध में या घृत में पकाकर देने से शुक्रवृद्धि होती है।

सार्वदैहिक प्रभावक वर्ग

७

८४. अरणी

परिचय : १. इसे अग्निमन्थ (संस्कृत), अरनीगनियार (हिन्दी), गणिभारी (बंगला), ऐरण (मराठी), अरणी (गुजराती), थलतजी (तमिल), नेलीचेट्ट (तेलुगु) तथा कलेरोडेण्ड्रोन फ्लामिडिल (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष २५–३५ फुट ऊँचा होता है। छाल सफेदी लिये पीले (धूसर) रंग की होती है। पत्ते गोलाकार, कुछ नुकीले और आमने-सामने लगे होते हैं। फूल छोटे, नीलापन लिये सफेद, गुच्छों में बड़े सुगन्धित होते हैं। फल मकोय या छोटे करौंदे के समान गुच्छों में आते हैं। वे पकने पर काले पड़ जाते हैं। यह भारत में सर्वत्र मिलती है।

३. इसकी दो जातियाँ हैं : (क) अग्निमन्थ (बड़ी अरणी, ऊपर वर्णित) और (ख) तर्कारी (छोटी अरणी या टेकार)।

गुण : यह स्वाद में कड़वी, चरपरी, कसैली, मीठी, पचने पर कटु तथा रूखी, हल्की और गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव रसवह-संस्थान (लिम्फेरिक सिस्टम) पर शोथहर रूप में पड़ता है। यह नाड़ी-शामक, पीड़ाहर, अग्निदीपक, उदरगत वायुसारक, रक्तशोधक, हृदय-उत्तेजक, कफघ्न, चर्मरोगहर तथा कटु-पौष्टिक है।

प्रयोग : **१. बवासीर :** अरणी के पत्तों को जल में पकाकर गर्म-गर्म पानी से बवासीर में सेंक करने से बवासीर का दर्द तुरन्त बन्द हो जाता है।

२. **उरुस्तम्भ** : अरणी और करंज को लेकर क्वाथ बनायें। उस पानी से धोने पर उरुस्तम्भ में आराम होता है। इसका लेप भी गोमूत्र मिलाकर करते हैं।

३. **शीतपित्त** : अरणी पीसकर ३ माशा उसका कल्क घी के साथ खाने से शीतपित्त, चकत्ते, खुजली आदि सात दिन में दूर हो जाते हैं।

८५. आँवला

परिचय : १. इसे आमलकी (संस्कृत), आँवला (हिन्दी), आमलकी (बंगला), आँवळा (मराठी), आँवला (गुजराती), नेल्लिकाई (तमिल), उशीरिका (तेलुगु) तथा फायलेन्थस एम्बलिका (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पेड़ मध्यम आकार का होता है। छाल सफेदी लिये पीली और बाहरी काष्ठ लाल रंग का होता है। पत्ते लम्बे डंठल पर इमली की पत्तियों के आकार के छोटे-छोटे पत्रकों से मिलकर बने होते हैं। फूल छोटे, पीले रंग के, लम्बे डंठल पर आते हैं। फल अण्डाकार, पीलापन लिये हरे रंग के, बाहर कलियों जैसी ६ रेखाओं से युक्त होते हैं।

३. यह भारत में सब जगह मिलता है।

रासायनिक संघटन : इसके फल में गैलिक एसिड, टैनिक एसिड, निर्यास, एल्ब्युमिन, सेल्युलोज, कैलशियम, विटामिन 'सी' आदि तत्त्व पाये जाते हैं।

गुण : यह स्वाद में मुख्यतः खट्टा, कसैला, पचने पर मधुर तथा हल्का, रूखा और शीतल है। यह दाह-प्रशामक, नेत्र, केश और इन्द्रियों के लिए लाभकर, नाड़ी तथा मस्तिष्क के लिए बलकारक, अग्निदीपक, रुचिकर, यकृत-उत्तेजक, उदररोगहर, हृदय-बलकारक, रक्तस्थापक, कफहर, गर्भस्थापक, प्रमेहहर, चर्मरोगहर तथा जीर्णज्वरहर है।

प्रयोग : १. **ज्वर** : प्यास, अनिद्रा और अस्वेदवाले ज्वर में आँवला और सोंठ घी में भूनकर दें।

२ **अर्श** : इनका और गुडुची का स्वरस ६-६ माशा पीसकर मट्ठा या दही के साथ खाने से बवासीर का रक्त तुरन्त बन्द हो जाता है।

३. **रक्तपित्त** : रक्तस्राव होने पर आँवले का रस मिश्री या मधु के साथ दें। नकसीर छूटने पर इसे पीसकर घी में भूनकर सिर पर लेप करें।

४. **अन्य रोग** : कामला और पाण्डुरोग में आँवले का स्वरस मधु के साथ, मूर्च्छा में घृत, शीतपित्त में गुड़, पित्त-शोथ में शर्करा तथा उदावर्त्त में जल के साथ दें।

५. **प्रमेह** : आँवला स्वरस १ तोला और हल्दी ३ माशा मिलाकर मधु के साथ देने से प्रमेहरोग दूर होता है।

६. **अग्निमान्द्य** : आँवले को भूनकर गुठली निकालकर पीसकर घी में भूनें। फिर जीरा, अजवायन, सेंधा नमक स्वादिष्ट-सा होने लायक मिलाकर थोड़ी भुनी हींग भी मिला दें। इसे सुखाकर गोली बनाकर देने से भूख बढ़ती है, पाचन होता है, डकार, चक्कर और दस्त में लाभ होता है।

७. **मूत्रकृच्छ्र** : आँवले का रस या चूर्ण गुण के साथ खाकर ऊपर से दूध पीने से रुका पेशाब खुलकर आता है।

८. **रसायन** : आँवले का गूदा अथवा चूर्ण आँवले के रस अथवा काढ़े में ही २१ बार घोटें। इसे प्रातः-रात्रि को मधु-घृत से सेवन कर ऊपर से दूध पीने से बुद्धिबल बढ़ता है, वृद्ध युवावत् हो जाता है तथा दाँत, आँख, कर्ण सब ठीक-ठीक कार्य करते हैं। आँवले के बरादर काले तिल लेकर मधु-घृत के साथ खाने से बल-बुद्धि बढ़ती है।

९. **नेत्ररोग** : तिमिर-रोग में आँवले का चूर्ण दूध के साथ खाने से लाभ होता तथा नेत्र-दृष्टि बढ़ती है।

१०. शिरोरोग : आँवले से बालों को धोने से बाल काले होते हैं, गिरते नहीं तथा शिरोरोग दूर होते हैं।

११. **हृदय-मस्तिष्क-यकृत-दौर्बल्य** : हृदय-दौर्बल्य, मस्तिष्क एवं यकृत-दौर्बल्य में आँवले का मुरब्बा सेवन करने से लाभ होता है।

८६. करंज

परिचय : १. इसे करंज (संस्कृत), कंजा (हिन्दी), डहर करंज (बंगला), करंज (मराठी), करंज (गुजराती), पुरगुम् (तमिल), कानगु (तेलुगु) तथा पागेमिया ग्लेवरा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष २५-५० फुट ऊँचा, मध्यम आकार का और सदा हरा-भरा होता है, जो प्रायः सड़कों के किनारे लगा रहता है। पत्ते टहनियों पर लगी ४-७ इञ्च लम्बी सींकों पर ५ से ७ संख्या में होते हैं। वे कुछ नोकदार, अण्डाकार और चमकदार होते हैं। फूल गुच्छों में सफेदी लिये आसमानी रंग के लगते हैं। फली २ इञ्च तक लम्बी, चपटी, पीछे की ओर कुछ टेढ़ी, मजबूत और सेम के आकार से मिलती-जुलती होती है। बीज कौड़ी के समान तेल से भरे होते हैं। एक-एक बीज १-१॥ इञ्च लम्बा होता है।

३. यह भारत में सर्वत्र पाया जाता है। विशेषतया मध्य भारत एवं दक्षिण भारत में मिलता है।

४. यह चार जातियों का होता है : (क) करंज (नक्तमाल, ऊपर वर्णित)। (ख) कण्टक करंज (पूतिकरंज, लैटिन : सीजलपिनिया बोण्डयूसेला)। (ग) चिरबिल्व। (घ) करंजी (अरारी)।

कण्टक करंज वृक्षों के सहारे रहनेवाला, झाड़दार, सघन, काँटेदार गुल्म होता है। ३-४ इञ्च लम्बी सींकों पर ६-१० जोड़े इमली या सिरस के पत्तों की आकृति के पत्ते लगे रहते हैं। पत्तों की टहनी के नीचे से निकले डंठल पर अण्डाकार, नुकीले पीले फूलों के गुच्छे लगते हैं। फली

२ इञ्च लम्बी, १॥-२ इञ्च चौड़ी, छोटे काँटों से ढँकी और चिपटी होती है, जिसमें खाकी रंग के और सफेद कठोर छिलकेवाले बीज रहते हैं। यह प्रायः सभी जंगलों, झाड़ियों, खेतों तथा बागों की मेंड़ों पर मिलता है।

रासायनिक संघटन : इसके बीजों में कड़वा और गाढ़े रंग का पोन्गेमिया तेल २७ प्रतिशत होता है। छाल में क्षारतत्त्व, राल, पिच्छिल द्रव्य तथा शर्करा मिलती है।

गुण : यह स्वाद में कड़वा, चरपरा, कसैला, पचने पर कटु तथा तीक्ष्ण होता है। इसका मुख्यतः त्वचा-ज्ञानेन्द्रिय पर कण्डुघ्न (खुजली आदि नाशक, त्वचा के लिए हितकर) प्रभाव पड़ता है। यह कीटाणु-नाशक, शोथहर, पीड़ाशामक, उदर-कृमिहर, यकृत-उत्तेजक, रेचक, कफहर, गर्भाशय-शोधक तथा अग्निदीपक है।

प्रयोग : पूति करंज **१. ज्वर** : करंज की पत्तियाँ १० तोला और काली मिर्च २ तोला मिलाकर चने के बराबर गोली बनाकर ज्वर आने से पहले ३ बार देने से ज्वर रुक जाता है।

२. उदरशूल : करंजबीज ५ तोला, सोंठ ५ तोला, हींग १ तोला को एरण्ड तेल में पीसकर गोली बनाकर गर्म जल से लेने पर किसी भी प्रकार का उदर-शूल तुरन्त बन्द हो जाता है।

३. बवासीर : करंज के पत्तों को घी या तेल में भूनकर मट्ठे के साथ खाने से तीन दिन में बवासीर मिट जाती है।

४. अम्लपित्त : इसके पुष्पों की कलियों को घी में भूनकर भोजन के बाद लें तथा तुरन्त वमन करा दें तो अम्लपित्त नष्ट हो जाता है।

५. जलोदर : करंज-बीजों को कांजी के साथ देने से जलोदर में लाभ होता है।

६. श्लीपद : करंज की पत्तियों का स्वरस १ तोला लेने से श्लीपद (फाइलेरिया) दूर हो जाता है।

७. **स्त्री-रोग :** करंज से सूतिका-ज्वर कम हो जाता है। गर्भाशय का संकोचन, पेट की पीड़ा की समाप्ति और रक्त का भलीभाँति निस्सरण हो जाता है। इसके सेवन से गर्भाशय का जख़्म भर जाता है। ज्वर के लिए बीजों या पत्तियों का चूर्ण १ माशा घी में भूनकर दें।

८७. कांचनार (कचनार)

परिचय : १. इसे कांचनार (संस्कृत), कचनार (हिन्दी), कांचन (बंगला), कोरल (मराठी), चंपाकटी (गुजराती), मदारै (तमिल), देवकांचनमु (तेलुगु) और बाँहिनिया वेरीगेटा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष मध्यम आकार का, सफेदी लिये, पीली छालयुक्त होता है। पत्ते का अगला भाग कटा होता है। ऐसा लगता है कि दो पत्ते जोड़ दिये हों। फूल सफेद या लाल रंग के होते हैं। फली ६–१० इञ्च तक लम्बी, पौन से आधा इञ्च तक चौड़ी सेम की तरह होती है। फली में बीज १०–१५ की संख्या में रहते हैं।

३. यह भारत में प्रायः समस्त प्रदेशों में, विशेषतः हिमालय की उपत्यका (तलहटी) में होता है।

४. फूलों के रंग के भेद से यह तीन प्रकार का होता है : (क) रक्त-पुष्पक (लाल फूलवाला, कांचनार)। (ख) श्वेत-पुष्पक (सफेद फूल-वाला, कोविदार)। (ग) पीत-पुष्पक (पीले फूलवाला कम प्राप्य)।

गुण : यह स्वाद में कसैला, पचने पर कटु तथा रूखा, हलका और शीतल होता है। इसका मुख्य प्रभाव रसवह-संस्थान पर गण्डमाला-नाशक (लिम्फेरिक ग्लेण्ड्स, रसग्रन्थियों की सूजन दूर करनेवाला) रूप में होता है। यह कृमिनाशक, कुष्ठादि चर्मरोग-नाशक, कफघ्न, आर्तवस्राव-स्तम्भक, वायुसारक, स्थूलताहर तथा मूत्र-विकार का नाशक है।

प्रयोग : १. गंडमाला : कांचनार की छाल का काढ़ा सोंठ मिलाकर

पीने से गण्डमाला और गलगण्ड में लाभ होता है। इसमें शुद्ध गुग्गुल मिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

२. **रक्तपित्त** : इसके पुष्पों का शाक घी में भूनकर देने या शहद के साथ खाने से रक्तपित्त में लाभ होता है।

३. **प्रदर** : इसकी पत्तियों को उबालकर दही का रायता बनाकर देने से स्त्रियों का रक्त-श्वेत प्रदर दूर हो जाता है। रक्तातिसार में भी लाभ होता है। कांचनार के फूलों को शर्करा के साथ भी देते हैं।

४. **अतिसार** : अतिसार में गुदा बाहर निकलने पर छाल को धो-पीसकर बाँधने से लाभ होता है।

५. **अर्श** : बवासीर में कचनार की छाल पीसकर मट्ठे के साथ लेने से लाभ होता है। इसके काढ़े से प्रक्षालन करने पर रक्तस्राव शीघ्र ठीक हो जाता है।

६. **मुँह के छाले** : बबूल, अनार तथा कचनार की छाल पकाकर कुल्ला करने से मुँह के छाले तथा बढ़े हुए टान्सिल में शीघ्र लाभ होता है।

सावधानी : इसे अधिक मात्रा में नहीं लेना चाहिए। इससे वमन होने लगता है। इसकी मात्रा छाल ३ माशा, पुष्प-कलियाँ २॥ तोला और शाक इससे भी अधिक ले सकते हैं।

८८. गम्भारी

परिचय : १. इसे गम्भारी-काश्मरी (संस्कृत), गंभार (हिन्दी), गाभार (बंगला), शिवण (मराठी), शीवण (गुजराती), गुमादि (तमिल), पद्मगोमरु (तेलुगु) तथा ग्मेलिना आर्बोरिया (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष ऊँचा, छायादार और सफेद छालवाला होता है। फूल पीले या ताम्बे के रंग के, डंठल पर लगते हैं। फल बहेड़े के समान,

अण्डाकार पीले रंग का, बादाम जैसी गुठलीसहित होता है। बीज संख्या में २-३ होते हैं।

३. यह विशेष रूप से पहाड़ी प्रदेश, हिमाचल (पश्चिम-उत्तर भाग), मध्य भारत, पूर्वी बंगाल, बिहार तथा बरार आदि में होता है।

रासायनिक संघटन : इसकी जड़ में एक पीला विस्किड आइल, रेजिन, एक एल्केलायड तथा कुछ बेंजोइक होता है। फलों में ब्यूटिरिक एसिड, टार्टीरिक एसिड, एल्केलायड, शर्करा, रेजिन तथा कुछ टेनिन द्रव्य होते हैं।

गुण : यह स्वाद में कड़वा, कसैला, मीठा, पचने पर कटु तथा भारी, गर्म, शीतल (फल में) है। इसका मुख्य प्रभाव रसवह-संस्थान (लिम्फेटिक सिस्टम) पर शोथहर रूप में पड़ता है। यह दाहशामक, पीड़ाहर, मस्तिष्क-बलदायक, तृष्णाशामक, अग्निदीपक, मूत्रजनक, हृदय-बलकारक, गर्भस्थापक, स्त्री-दुग्धवर्धक, शुक्रवर्धक, वायु-सारक तथा रसायन है।

प्रयोग : १. रक्तातिसार : रक्तातिसार में इसके फलों को भूनकर अनारदाना मिलाकर देना चाहिए।

२. सूखारोग और गर्भवृद्धि : गम्भारी के फल मधुयष्टि (मुलहठी) मिलाकर देने से सूखारोग दूर होता है एवं गर्भवृद्धि होती है।

३. शीतपित्त : शीतपित्त में इसके सूखे फलों को उबालकर दूध के साथ सेवन करना चाहिए।

४. विस्फोट : अंगुलि में विस्फोट होने पर इसके सात पत्ते बाँधने से वह बैठ जाता है।

८९. गिलोय (गुडूची)

परिचय : १. इसे गुडूची (संस्कृत), गिलोय (हिन्दी), गुलच (बंगला), गुळवेल (मराठी), गलो (गुजराती), शिण्डिल कोडि

(तमिल), टिप्पाटिगो (तेलुगु), गुलंच (अरबी) तथा टिनोस्पोरा कार्डीनोलिया (लैटिन) कहते हैं।

२. यह पेड़ों आदि पर फैलनेवाली एक लम्बी बेल है। ऊपर की छाल पतली तथा नीचे का हिस्सा हरापन लिये गूदेदार होता है। पत्ते दिल के आकार के, नुकीले तथा चिकने होते हैं। फूल छोटे और पीले होते हैं। फल मटर की तरह और पकने पर लाल हो जाते हैं। यह भारत में सब जगह होती है।

रासायनिक संघटन : इसमें स्टार्च, बर्बेरिन तथा एक कड़वा सत्त्व होता है।

गुण : यह स्वाद में कड़वी, कसैली, पचने पर मधुर तथा भारी, चिकनी, गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव सर्वशरीर पर रसायन रूप में पड़ता है। यह पीड़ाशामक, तृष्णा, वमन और दाहशामक, अग्निदीपक, यकृत-विकारहर, कृमिहर, हृदय-बलदायक, रक्तशोधक, रक्तवर्धक, कफहर शुक्र-वर्धक, प्रमेहहर, चर्मरोगहर, जीर्ण-विषम-ज्वरहर तथा कटु पौष्टिक है।

प्रयोग : १. **ज्वर** : विषम ज्वर में ताजी गिलोय का १ तोला रस २-३ बार दें। वात-ज्वर में गिलोय का काढ़ा घी के साथ दें। गर्मी के ज्वर में चीनी मिलाकर दें। वात-कफज्वर में भी गिलोय का काढ़ा दे सकते हैं। जीर्ण-ज्वर, तिल्ली बढ़ने पर छोटी पीपल २ नग, गिलोय ५ माशा, काली मिर्च ७ नग, अजवायन ४ रत्ती मिलाकर गर्म करके देने से लाभ होता है।

२. **रक्त-विकार** : रक्त-विकार में गिलोय का रस एरण्ड-तेल में मिलाकर लें। यह रक्त-शुद्धि भी करती है।

३. **अर्श** : बवासीर में गिलोय मट्ठे के साथ पीयें।

४. **कामला** : पीलिया में गुडूची का रस मट्ठे के साथ पीयें।

५. **प्रमेह :** गुडूची स्वरस १ तोला मधु के साथ पीने से गँदला मूत्र, शर्करा आना बन्द होकर प्रमेह में भी लाभ होता है। उपदंश, सूजाक में भ गिलोय का काढ़ा लाभ करता है।

१०. चिरायता

परिचय : १. इसे किराततिक्त (संस्कृत), चिरायता (हिन्दी), चिरेता (बंगला), किराईत (मराठी), करियातुं (गुजराती), नील-बेम्बु (तमिल) तथा स्वेर्शिया चिरेटा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा २-३ फुट ऊँचा होता है। काण्ड गोल होता है। पत्ते २-३ इञ्च लम्बे, लगभग १-२ इञ्च चौड़े और नोकदार होते हैं। अनेक शाखा-प्रशाखाओंवाले डंठल पर हरे-पीले फूल आते हैं। बीज छोटे आकार के होते हैं।। इसकी कई जातियाँ पायी जाती हैं।

३. यह हिमालय प्रदेश में कश्मीर से भूटान तक ४ हजार से १० हजार फुट की ऊँचाई पर होता है। नेपाल तथा दक्षिण भारत में भी पाया जाता है।

रासायनिक संघटन : इसमें आफेलिक एसिड, एक चिरैटिन नामक ग्लूकोसाइड, राल, गोंद, पोटाश, कार्बोनेट, मैगनीशियम तथा भस्म (एश) ४–६ प्रतिशत होती है।

गुण : यह स्वाद में कड़वा, गुण में लघु, रूक्ष, शीत-कफ-पित्त-नाशक है। यह तृष्णाशामक, दीपन, कृमिहर, रक्तशोधक, स्त्रीदुग्ध-शोधक, चर्मरोग-नाशक, दाह-प्रशामक तथा कटु पौष्टिक है।

प्रयोग : . **यकृत-विकृति** : यकृत के सुचारु कार्य न करने तथा पित्तस्राव रुक जाने से दाह, जलन, शोथ, ज्वर पैदा होने, जी मिचलाने, भूख न लगने पर ३ माशा चिरायता रात्रि में भिगोकर प्रातः उसे छानकर मिश्री के साथ पीयें। निश्चय ही लाभ होता है।

२. **फोड़ा-फुन्सी** : फोड़ा-फुन्सी होने पर चिरायता पिलाते हैं।

३. **स्तन्यशुद्धि** : स्त्रियों का दूध भारी एवं अशुद्ध होने पर चिरायते का अर्क या चिरायता-फांट दिया जाता है।

४. **शोथ :** सर्वांग-शोथ में चिरायता पिलाना तथा लेप करना भी लाभप्रद है।

९१. तुलसी

परिचय : १. इसे तुलसी (संस्कृत), तुलसी, (हिन्दी), तुळस (मराठी), गाप्पासचेट्टु (तेलुगु) तथा ओसिमम सेंक्टम (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा १-२ फुट ऊँचा होता है। पत्ते लगभग १ इञ्च के कुछ अण्डाकार और सुगन्धयुक्त होते हैं। फूल एक मंजरी में लगते हैं। इसके बीज चपटे और ललाई लिये होते हैं।

३. यह भारत में सब जगह लगायी और पायी जाती है।

४. तुलसी के कई भेद होते हैं : १. सफेद तुलसी, २. काली तुलसी, ३. वन-तुलसी, ४. राम-तुलसी, ५. कपूरी तुलसी।

रासायनिक संघटन : इसमें पीलापन लिये हरे रंग का सुगन्धयुक्त तेल पाया जाता है, जिससे बेसिल केम्फर नामक सत्त्व बनता है।

गुण : यह स्वाद में चरपरी, कड़वी, पचने पर कटु तथा हल्की, रूखी, गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव सर्वशरीर पर नियतकालिक ज्वर-प्रतिबन्धक रूप में पड़ता है। यह दुर्गन्धहर, कीटाणुनाशक (विसंक्रामक), उत्तेजक, रक्तशोधक, शोथहर, कफहर, मूत्रजनक, विषहर, चर्मरोग-निवारक तथा बलदायक है।

प्रयोग : १. कुष्ठ : तुलसी की जड़ को पीसकर प्रातः सोंठ मिलाकर जल के साथ लेने से कुष्ठ में लाभ होता है।

२. **बस्तिशोथ** : तुलसी के बीज और जीरे का चूर्ण १ माशा लेकर

उसमें ३ माशा मिश्री मिला सुबह-शाम दूध के साथ लेने से मूत्रदाह, पूय, बस्तिशोथ दूर होता है।

३. **संधिशोथ :** ३ माशा तुलसी के रस में २ माशा अजवायन मिलाकर लें तो संधिशोथ में लाभ होता है।

४. **वमन :** तुलसी का रस देने से वमन बन्द होता है।

५. **ज्वर :** तुलसी पत्र ३–९ नग, कालीमिर्च के साथ देने से ज्वर, इन्फ्लूएन्जा दूर होता है। इसकी चाय बनाकर भी पी सकते हैं। पुराने या जहरीले ज्वर में तुलसी का रस शरीर पर मलने से विशेष लाभ होता है।

९२. द्रोणपुष्पी (गूमा)

परिचय : १. इसे द्रोणपुष्पी (संस्कृत), गूमा (हिन्दी), हलकसा (बंगला), तुंबा (मराठी), कूबो (गुजराती), तुम्बारी (तमिल), मुयाप्पातोसी (तेलुगु) तथा ल्युकस सिफेलोटल (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा बरसात में २-३ फुट ऊँचा, चौकोन और रोमश काण्डवाला होता है। पत्ते २-३ इञ्च लम्बे, आधा इञ्च चौड़े, किनारे दाँतेदार, रोयेंदार होते हैं। फूल सफेद रंग के, गुच्छों में, आकृति में प्याले के समान १-२ इंच की गोलाई में होते हैं। फूलों के गुच्छों पर दो पत्तियाँ लगी रहती हैं।

३. यह हिमालय में ४ हजार फुट की ऊँचाई तक तथा भारत में सब जगह मिलती है।

रासायनिक संघटन : फलों में एक सुगन्धयुक्त तेल तथा एक एल्केलायड होता है।

गुण : यह स्वाद में चरपरी, नमकीन, मीठी, पचने पर मधुर तथा भारी, रूखी, तीक्ष्ण, गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव सर्वशरीर पर नियत-

कालिक ज्वरप्रतिबन्धक रूप में पड़ता है। यह कीटाणुनाशक, विषहर, अग्निदीपक, यकृतक्रिया-शोधक, रक्तशोधक, शोथहर, कफहर, आर्तव-जनक, स्वेदजनक तथा उदररोगहर है।

प्रयोग : **१. विषमज्वर** : विषमज्वर में द्रोणपुष्पी (गूमा) का स्वरस पीसकर बायें हाथ की नाड़ी के ऊपर बाँधने से लाभ होता है।

२. कामला : द्रोणपुष्पी के रस का नस्य नेत्र में लगाने से नेत्र का पीलापन दूर होता है।

३. बालशोथ : इसके कल्क (पिट्ठी) को घी में पकाकर इस घृत की मालिश करने से बच्चों का सूखा रोग दूर होता है।

९३. पाटला

परिचय : १. इसे पाटला (संस्कृत), पाढ़ल (हिन्दी), पारूल (बंगला), पाडल (मराठी), पाडल (गुजराती), पाडरि (तमिल), कलिगोट्टु (तेलुगु) तथा स्टिरिओस्पर्मम् स्वैविओलेन्स (लैटिन) कहते हैं।

२. इसके ३०–६० फुट ऊँचे तने बाहर से सफेदी लिये, काले दागों से युक्त और अन्दर से कुछ पीलापन लिये होते हैं। पत्ते लम्बी टहनियों पर, आमने-सामने ३-६ इञ्च लम्बे होते हैं। फल पीलापन लिये लाल या ताम्बे के रंग के तथा सुगन्धित होते हैं। फल १॥ फुट लम्बा, पौन इञ्च चौड़ा, छोटे रोओं तथा चार शिराओं से युक्त होता है। बीज १ या १॥ इञ्च लम्बे १२–३० संख्या में होते हैं।

३. यह भारत के जलीय प्रदेशों में होता है। बिहार, बंगाल आदि प्रान्तों में इसकी विशेष उपज होती है।

४. इसके दो प्रकार बताये गये हैं : (क) रक्त तथा (ख) श्वेत।

रासायनिक संघटन : इसके फूलों में एल्ब्यूमिन, शर्करा, म्युसिलेज तथा मोम द्रव्य मिलते हैं।

गुण : यह स्वाद में कड़वा, कसैला, पचने पर कटु तथा रूखा, हल्का, कुछ गर्म है। यह पीड़ाहर, तृष्णाशामक, यकृत-उत्तेजक, हृदयबलकारक, कफघ्न, मूत्रल, शुक्रवर्धक, दाहशामक तथा रुचिवर्धक है। इसका मुख्य प्रभाव रसवहसंस्थान पर शोथहर रूप में पड़ता है।

प्रयोग : १. **शोथ** : पाटला की छाल का काढ़ा शोथ, वेदना, वात एवं कफज विकारों तथा वात-व्याधि में दिया जाता है।

२. **अर्श** : अम्लपित्त और अर्श में इसकी छाल पानी में भिगोकर प्रातः गर्म करके देना चाहिए।

३. **हिक्का** : इसके फूलों को शहद के साथ देने से हिचकी रुक जाती है।

४. **शुक्रमेह** : इसके फूलों का गुलकन्द शुक्रमेह एवं ताकत के लिए प्रयुक्त करते हैं।

५. **शिरःशूल** : इसके बीजों को घिसकर सिर पर लेप करने से आधा शीशी अधकपारी का दर्द बन्द हो जाता है। इसका प्रभाव तो यहाँ तक है कि एक धागे में बाँधकर जिस तरफ दर्द हो रहा हो, उधर के कान को बाँध दें तो दर्द एकदम दूर हो जाता है।

ग्रीष्म ऋतु में हरिद्वार के गंगातट पर लोग इसे खूब बेचते और खरीदते हैं। इसका बड़ा चमत्कारपूर्ण प्रभाव होता है।

९४. पाठा

परिचय : १. इसे पाठा (संस्कृत), पाढ़ (हिन्दी), एकतेजा (बंगला), पाहाडवेल (मराठी), कालीपीठ (गुजराती), अम्पाट्टा (तमिल), पाडा (तेलुगु) तथा सिसेम्पेलस पपेरा (लैटिन) कहते हैं।

२. पाठा की बेल होती है, जो वृक्षों पर चढ़ती और फैलती है। पत्ते हृदय के आकार के १-४ इञ्च लम्बे तथा १-१॥ इञ्च चौड़े होते हैं। फूल पीलापन लिये सफेद रंग के होते हैं। फल मटर के समान तथा नारंगी रंग के होते हैं। इसकी दूसरी जाति 'राजापाठा' कहलाती है।

३. यह पंजाब से लेकर दक्षिण भारत तक पाया जाता है। लंका में भी मिलता है।

रासायनिक संघटन : इसकी जड़ में सिसेम्पेलिन नामक तत्व आधा प्रतिशत मिलता है।

गुण : यह स्वाद में कड़वा, गुण में लघु, तीक्ष्ण, उष्ण तथा कफ-वात-शामक है। यह रक्तशोधक, शोथहर, दीपन, स्त्रीदुग्धशोधक, मूत्रजनक, चर्मरोगहर, दाहप्रशामक, विषघ्न तथा बलवर्धक है।

प्रयोग : १. बस्तिशोथ-मूत्रकृच्छ्र : मूत्रेन्द्रिय की श्लेष्मता पर इसकी संग्राहक, शामक और बलकारक क्रिया होती है। १-२ माशा पाठामूल के काढ़े में मुलेठी २ माशा और गिलोय ३ माशा मिलाकर देने से बस्ति-शोथ, मूत्रकृच्छ्र पर बहुत लाभ होता है।

२. **बवासीर :** पाठा-मूल को सोंठ के साथ देने से बवासीर नष्ट होती है। मट्ठे के साथ देने से पेट में वायु नहीं भरती, उससे वायु का अनुलोमन हो जाता है।

३. **अतिसार :** पाठा के पत्रों को दही के साथ देने से अतिसार नष्ट हो जाता है।

४. **अन्तर्विद्रधि :** उदर के भीतर फोड़ा होने पर पाठा की जड़ शहद के साथ दें और ऊपर से चावल-धोया पानी पिलायें।

९५. बरियारा (बला)

परिचय : १ इसे बला (संस्कृत), बरियारा-खिरैंटी (हिन्दी), बेड़ेला (बंगला), चिकणा (मराठी), बल (गुजराती), परियार तुट्टि (तमिल), तेलाआण्टिस (तेलुगु) तथा सिडा-स्पेसीज (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पौधा २-४ फुट का मजबूत होता है। पत्ते १-२ इञ्च

लम्बे दन्तुर (धारदार) होते हैं। फूल पीले तथा सफेद होते हैं। फल मूँग के समान होते हैं। बीज छोटे, काले या भूरे रंग के होते हैं। ये ही 'बीजबन्द' कहलाते हैं।

३. शास्त्र में 'बला-चतुष्टय' का वर्णन है : (क) खिरेंटी, (ऊपर वर्णित)। (ख) अतिबला (कंघी, ४-५ फुट ऊँचा पौधा)। (ग) महाबला (विवादास्पद)। (घ) नागबला (विवादास्पद)। इसकी और भी ९ जातियाँ बतायी जाती हैं।

४. यह भारत के सभी प्रान्तों में यत्र-तत्र उत्पन्न होती है।

रासायनिक संघटन : इसके बीजों में सबसे अधिक एल्केलायड (क्षार-तत्त्व) मिलता है, जिसका मुख्य भाग एफेड्रीन होता है। फेली-एसिड, पोटाशियम नाइट्रेट, रेजिन आदि तत्त्व भी पाये जाते हैं।

गुण : यह स्वाद में मीठी, पचने पर मधुर तथा भारी, चिकनी, लुआबदार, शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव सर्वशरीर पर बलकारक रूप में पड़ता है। यह पीड़ाशामक, शोथहर, नाड़ीबलप्रद, वातानुलोमक, हृदय-बलदायक, रक्तपित्तशामक, गर्भपोषक, शुक्रवर्धक, मूत्रजनक, ज्वर-हर तथा नेत्र के लिए लाभकर है।

प्रयोग : १. प्रदर : बला की जड़ घोंटकर शहद और दूध के साथ देने से प्रदर मिटता है।

२. **गर्भिणीशूल :** गर्भिणी को शूल होने पर बला का काढ़ा पिलायें। इससे हाथ के ऊपरी भाग के वात से सूखने पर भी लाभ होता है।

३. **मूत्रातिसार :** पेशाब बार-बार आने पर बला की जड़ पीसकर दूध और मिश्री के साथ दें। इसे मधु के साथ भी ले सकते हैं। इससे प्रमेह भी ठीक होता है।

१६. बिल्व

परिचय : १. इसे बिल्व (संस्कृत), बेल (हिन्दी), बेल (बंगला), बेल (मराठी), बीली (गुजराती), अलुविधम् (तमिल), बिल्वमु (तेलुगु), सफरजाले हिन्दी (अरबी) तथा ईग्ल मार्मेलस (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष ३०–४० फुट ऊँचा, शाखाओं पर सीधे मोटे काँट से युक्त होता है। प्रत्येक सींक पर तीन पत्ते (पत्रक) और बीचवाला पत्ता शेष दोनों पत्तों से कुछ बडा तथा सभी गन्धयुक्त होते हैं। फूल सफेद हरापन लिये, शहद के समान गंधवाले होते हैं। फल बड़ा, गोलाकार, मजबूत छिलकेवाला, कच्ची अवस्था में हरा, पर पकने पर पीला होता है। बीज छोटे और संख्या में अनेक होते हैं, जो गूदे में लिपटे रहते हैं।

३. यह सम्पूर्ण भारत में विशेषतः बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्यभारत, दक्षिण भारत में पाया जाता है।

४. यह दो प्रकार का होता है : (क) वन्य बिल्व (जंगली बेल, फल छोटा) और (ख) ग्राम्य बिल्व (फल बड़ा, काँटे कम, अधिक स्वाद)।

रासायनिक संघटन : इसके फल के गूदे में म्युसिलेज, पेक्टिन, शर्करा, टेनिन, उड़नशील तेल, कड़वा पदार्थ, गोंद भस्म (एश) तथा एक क्रियाशील तत्त्व मार्मेलोसिन होते हैं। बीजों में पीलापनयुक्त तेल रहता है।

गुण : यह स्वाद में कसैला, कड़वा, मीठा, पचने पर कटु तथा रूखा, हल्का तथा गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव रक्तवह-संस्थान (लिम्फेटिक सिस्टम) पर शोथहर (सूजन नष्ट करनेवाला) रूप में पड़ता है। यह नाड़ीतन्तुओं का शामक, ग्राही (दस्त आदि रोकनेवाला), कच्चा फल हल्का और रेचक (लेक्जेटिव) और पका फल यकृत-उत्तेजक, कफघ्न,

हृदय-बलकारक, मूत्र की मात्रा और उसमें आनेवाली शर्करा कम करनेवाला, गर्भाशय-शोथहर तथा बलदायक है।

प्रयोग १. मस्तिष्क-दौर्बल्य : बेल की जड़ ज्ञान-तन्तुओं के लिए शामक है। हृदय की अधिक धड़कन, अनिद्रा, पागलपन, विषमज्वर, प्रसूतिज्वर में इसकी जड़ की छाल का काढ़ा बनाकर देते हैं।

२. दस्त : पतले दस्त एवं कब्ज में पके बेल का शर्बत देना चाहिए। रक्तमिश्रित आँव में कच्चे बेल का गूदा भूनकर देते हैं। अरारोट के साथ बेल देने से पतले दस्त शीघ्र बन्द हो जाते हैं।

३. मधुमेह : बेल के पत्ते और कालीमिर्च का सेवन मधुमेह में लाभप्रद है।

४ मूत्र में जलन : मूत्र में जलन या पीब आने पर बेल के पत्ते, जीरा और मिश्री बराबर मिलाकर दूध के साथ देना चाहिए।

५. वमन : कच्चे बेल का काढ़ा वमन में लाभप्रद है।

६. बवासीर : खूनी बवासीर में बेल के पत्ते पीसकर देने से शोथ नष्ट होकर मल साफ होता है तथा रक्त बन्द होता है।

७. बहरापन : कान की बधिरता में बेल के गूदे को तेल में पकाकर गोमूत्र डाल तेल सिद्ध करें। यह तेल कान में डालने से बधिरता दूर होती है।

९७. मुलेठी (मधुयष्टि)

परिचय : १. इसे मधुयष्टि (संस्कृत), मुलेठी (हिन्दी), यष्टिमधु (बंगला), जेष्ठीमध (मराठी), जेठीमध (गुजराती), अतिमधुरम् (तमिल), यष्टिमधुकमु (तेलुगु), अस्लुस्सूस (अरबी), तथा ग्लिसिरोइजा ग्लेब्रा (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष झाड़ीनुमा २–४ फुट बड़ा होता है। तने से बहुत-सी

शाखाएँ निकलती हैं। पत्ते पंखे की तरह ४-७ जोड़े में आते हैं। फूल हलके गुलाबी रंग के लगते हैं। फली १ इंच लम्बी, चपटी और २-५ चौकोर बीजोंवाली होती है। जड़ लम्बी, लाली लिये पीले रंग की शाखाओंवाली होती है।

३. यह ईरान, अफगानिस्तान, अरब, तुर्किस्तान, दक्षिण यूरोप और चीन में होती है। भारत में यह पंजाब में अधिक होती है।

रासायनिक संघटन : इसकी जड़ में चूर्णरूप में ग्लिसिरायजिन नामक तत्त्व, एम्पैरेजिन, शर्करा, स्टार्च, राल, गोंद, कैलशियम, मैगनेशियम के लवण, फास्फोरिक सलफ्यूरिक मैलिक एसिड पाये जाते हैं।

गुण : मुलेठी स्वाद में मीठी, पचने पर मीठी तथा भारी, चिकनी, शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव श्वसन-संस्थान पर कफहर रूप में पड़ता हैं। यह दाहशामक, केशों को लाभकर, शोथहर, नाड़ी-बलदायक, वमन-रोधक, तृष्णाशामक, विरेचक, आमाशय की अम्लता कम करनेवाली, रक्त-स्तम्भक, शोधक, वर्धक, मूत्रजनक, शुक्रवर्धक, चर्मरोगहर, स्वेद-जनक, रसायन तथा बलकारक है।

प्रयोग : १. **तिमिररोग :** मुलेठी और आँवला पीसकर रात्रि में किसी पात्र में भिगोकर प्रातः इसके पानी से नेत्रों को धोने से नेत्र-ज्योति बढ़ती है।

२. **कास :** मुलेठी के टुकड़े मुँह में रखने से कफ शीघ्र निकलता है।

३. **अधोरक्तपित्त :** यदि गुदा या लिंगेन्द्रिय से रक्त आ रहा हो तो १ तोला मुलेठी-चूर्ण १ तोला शहद में मिलाकर दें और वमन करायें तो रक्त शीघ्र बन्द हो जाता है।

४. **रक्त-वमन :** रक्त का वमन आने पर मुलेठी पीसकर दूध में मिलाकर दें।

५. रसायन : मुलेठी का चूर्ण दूध के साथ सेवन करने से बल एवं धातुओं की वृद्धि होती है। इसका चूर्ण ६ माशा घृत में मिलाकर सेवन करने से तथा ऊपर से दूध पीने से वीर्यवृद्धि होती है।

६. पाण्डुरोग : पाण्डुरोग (रक्ताल्पता) में मुलेठी का चूर्ण या काढ़ा शहद के साथ दें।

७. स्वरभंग : गला बैठने पर दूध में मुलेठी और घृत डालकर दें।

८. मूत्र रुकना : पेशाब न आने पर मुलेठी तीन माशा और मुनक्का १० नग दूध के साथ लें।

९. अपस्मार : अपस्मार (मृगी) में कूष्माण्ड (पेठा) के रस में मुलेठी पीसकर दें।

१०. विरेचन : ३ माशा मुलेठी-चूर्ण चीनी मिलाकर लेने से विरेचन होता है तथा कफ निकल जाता है।

सावधानी : इसके अधिक सेवन से वृक्क तथा प्लीहा को हानि होती है। अतः इसे गुलाब के फूल या मुनक्का में देना चाहिए। मुलेठी की सामान्य मात्रा ४ रत्ती से २।। माशा तक है।

९८. सप्तपर्ण (छितवन)

परिचय : १. इसे सप्तपर्ण (संस्कृत), सतोना-छितवन (हिन्दी), छातिम (बंगला), सातवणी (मराठी), सातवण (गुजराती), एसिलैप्पाले (तमिल), एडाकुलरिटो (तेलुगु) तथा ऐल्स्टोनिया स्कालरिस (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पेड़ हरा-भरा रहता है। छोटे पेड़ भी देखने में आते हैं। छाल मोटी और सफेद होती है तथा काटने पर सफेद दूध निकलता है। पत्ते लगभग ७, ४ या ६ इञ्च लम्बे, १ या १।। इञ्च चौड़े, ऊपर की सतह चिकनी और हरे रंग की तथा नीचे की सतह सफेदी लिये होती

है। फूल हरापन लिये सफेद रंग के, सुगंधियुक्त गुच्छे में आते हैं। फली लगभग १ फुट लम्बी, कुछ टेढ़ी और चपटी होती है। बीज दोनों किनारों पर रोयेंदार छोटी और सफेद रंग की फली में रहते हैं।

३. यह विशेष रूप से बंगाल, दक्षिण भारत तथा हिमालय में २ हजार फुट की ऊँचाई तक पाया जाता है।

रासायनिक संगठन : इसकी छाल में कई तत्त्व पाये जाते हैं : डिटेमिन, एकिरेनिन, एकिरेनिक, एकिकाडचिन, एकिसरीन, एकिरिन, एकिरेटिक।

गुण : यह स्वाद में कड़वा, कसैला, पचने पर कटु तथा हल्का, चिकना और गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव सर्वशरीर पर नियतकालिक ज्वरप्रतिबन्धक (पारी से आनेवाले ज्वर-विषमज्वर के निरोधक) रूप में पड़ता है। यह चर्मरोगहर, व्रणरोपक, कृमिहर, रेचक, अग्निदीपक, कीटाणु-विसंक्रामक, रक्तशोधक, हृदय-बलदायक, कफहर, स्त्री-दुग्ध-जनक तथा कटु पौष्टिक है।

प्रयोग : १. **कुष्ठ** : सप्तपर्ण की छाल के काढ़े से स्नान करने से समस्त कुष्ठ और रक्तविकार दूर होते हैं।

२. **दन्तगत विष** : सप्तपर्ण की छाल के चूर्ण का शहद के साथ मंजन करने से दाँत का विष दूर होता है। सप्तपर्ण का दूध और आक का दूध मिलाकर लगाने से दाँत का कृमिजन्य दर्द तुरन्त बन्द हो जाता है।

३. **स्तन्यशुद्धि** : गिलोय और सप्तपर्ण की छाल का काढ़ा सोंठ में मिलाकर देने से स्त्रियों का दूध शुद्ध हो जाता है।

९९. सोनपाठा (श्योनाक)

परिचय : १. इसे श्योनाक (संस्कृत), सोनपाठा (हिन्दी), शोणा

(बंगला), टेटू (मराठी), अरडुशी (गुजराती), वंगमारम् (तमिल), दुण्डिल्लम् (तेलुगु) तथा ओरीविजलम् इण्डिकम् (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका वृक्ष २५–३५ फुट तक का हरियाली लिये पीली, चिकनी और कुछ मोटी छालवाला और तना पीलापन लिये सफेद रंग का होता है। पत्ते काफी लम्बे होते हैं।

३. यह भारत में प्रायः निचले स्थानों में सर्वत्र मिलता है।

रासायनिक संघटन : इसकी जड़ की छाल में ओरोकलीन नामक एक कड़वा ग्लूकोसाइड नामक तत्त्व, पेक्टोन, वसा, मोम, क्लोरोफिल, टैनिन तथा एसिड पाये जाते हैं।

गुण : यह स्वाद में कड़वा, कसैला, पचने पर कटु तथा हल्का, रूखा शीतल है। इसका मुख्य प्रभाव रसवह-संस्थान (लिम्फेटिक सिस्टम) पर शोथहर रूप में पड़ता है। यह अग्निदीपक, मूत्रजनक, पीड़ाशामक, स्वेदजनक, कफघ्न, स्तम्भक तथा कटु पौष्टिक है।

प्रयोग १. **आमवात :** आमवात, संधिवात, शोथ या वेदनायुक्त वात में इसकी छाल का काढ़ा बनाकर पिलाते और धोते भी हैं।

२. **मूत्राशय-शोथ :** इसकी छाल पीसकर लेप करने से पेशाब आती है तथा मूत्राशय का शोथ उतर जाता है।

३. अतिसार : इसका पुट-पाक कर त्वचा का रस देने से अतिसार में शीघ्र आराम मिलता है। यह स्तम्भक है। अतः जब बहुत कब्ज हो जाय तो एरण्ड-तेल भी देना चाहिए।

१००. हरड़ (हरीतकी)

परिचय : १. इसे हरीतकी (संस्कृत), हरड़ (हिन्दी), हरीतकी (बंगला), हिरडे (मराठी), हरडे (गुजराती), काकाकाई (तमिल), कान्दुकार (तेलुगु), हलीलज (अरबी) तथा टर्मिनेलिया चेबुला (लैटिन) कहते हैं।

२. इसका पेड़ काफी बड़ा होता है। पत्ते ३–८ इञ्च लम्बे, २–४ इञ्च चौड़े नुकीले होते हैं। सफेद या पीले रंग के फल छोटे डंठल पर आते हैं। फल १-१॥ इञ्च लम्बे, कच्ची अवस्था में हरे और पकने पर पीलापन लिये कत्थई रंग के हो जाते हैं। बीज हरएक फल में रहता है।

३. शास्त्र के अनुसार इसकी सात जातियाँ हैं, पर व्यवहार में इसके तीन ही प्रकार पाये जाते हैं : (क) छोटी हरड (कच्चे और कोमल, सूखे फल)। (ख) पीली हरड़ (गुठली होने के बाद कच्ची अवस्था के फल)। (ग) बड़ी हरड़ (पूरे पके बड़े फल) उक्त तीनों प्रकार के फल सुखाये हुए रूप में बाजार में आते हैं।

४. यह पहाड़ी स्थानों में ५ हजार फुट तक की ऊँचाई पर उत्तर भारत में तथा मध्यप्रदेश, मद्रास, मैसूर और बम्बई में प्राप्त होती है।

रासायनिक संघटन : इसके फल में टैनिक एसिड ४५ प्रतिशत, गैलिक एसिड अधिक मात्रा में, पीला रंजक-द्रव्य, चुबैलिनिक एसिड पाये जाते हैं।

गुण : यह स्वाद में कसैली, मुख्यतः पचने पर मधुर तथा हल्की, रूखी और गर्म है। इसका मुख्य प्रभाव सर्वशरीर पर रसायन रूप में पड़ता है। यह शोथहर, पीड़ानाशक, व्रणशोधक, रोपक, नाड़ी-बलदायक, मस्तिष्क-शक्तिवर्धक, नेत्र-कण्ठ आदि अंग को लाभकर, अग्निदीपक, हल्की विरेचक, कृमिहर, यकृत-उत्तेजक, हृदयबलकारक, रक्तस्थापक, शोथहर, कफहर मूत्रजनक, चर्मरोगहर, ज्वरहर है।

प्रयोग : १. **हरड़ की सेवन-विधि** : यह चबाकर खाने से अग्नि बढ़ती है। चूर्ण खाने से दस्त साफ होता है। उबालकर खाने से मल को बाँधती है। भूनकर खाने से त्रिदोष हरती है। बल-बुद्धि बढ़ाने अथवा मल-मूत्र साफ होने के लिए इसे भोजन के साथ खायें। भोजन पचाने के लिए, जुकाम, इन्फ्लुएंजा, वात-कफविकार में भोजनोपरान्त खायें।

२. ऋतु हरीतकी : वर्षा ऋतु में सेंधानमक के साथ, शरद् ऋतु में शर्करा के साथ, हेमन्त में सोंठ के साथ, शिशिर में पिप्पली के साथ, वसन्त में मधु के साथ तथा ग्रीष्म में गुड़ के साथ हरड़ का चूर्ण खायें।

३. अर्श : अजीर्ण-गुल्म-वातरक्त : अर्श, अजीर्ण, गुल्म, वातरक्त तथा शोथ में हरीतकी-चूर्ण गुड़ के साथ देने से लाभ होता है।

४. पित्तशूल : पित्तशूल में हरीतकी गुड़-घृत के साथ दें।

५. छर्दिकण्ठरोग विषमज्वर : छर्दिकण्ठ रोग, विषमज्वर में हरीतकी मधु के साथ दें।

६. श्लीपद दाद पाण्डु-रोग : श्लीपद, दाद, खाज, पाण्डु रोग में हरीतकी-चूर्ण गोमूत्र के साथ दें।

७. अम्लपित्त-रक्तपित्त : अम्लपित्त, रक्तपित्त, जीर्णज्वर में हरीतकी मुनक्का के साथ दें।

८. आमवात-आन्त्रवृद्धि : आमवात, वृषण तथा आन्त्रवृद्धि पर हरीतकी-चूर्ण एरण्ड तेल के साथ दें।

९. बलवृद्धि : बल के लिए हरीतकी चूर्ण घृत-मधु से लें।

१०. रसायन : हरीतकी चूर्ण को पीसकर लोहे के पात्र में रात्रि को चुपड़कर प्रातः घृत और मधु के साथ खाने से सर्वधातुओं की पुष्टि होती है।

११. छाले : मुख के छालों पर छोटी हरड़ घिसकर लगायें।

१२. स्वेदावरोध : अधिक पसीना आने पर छोटी हरड़ का चूर्ण शरीर पर लगायें।

१३. नेत्ररोग : नेत्र-शोथ, दर्द, लालिमा पर छोटी हरड़ घिसकर थोड़ा घी मिलाकर नेत्रों पर गर्म-गर्म लेप करने से निश्चित लाभ होता है।

सावधानी : दुर्बलता, पतले, थके, व्रती, गर्म प्रकृतिवाले, गर्भवती स्त्री, इसका उपयोग सावधानी से करें। हरीतकी की सामान्य मात्रा १–६ माशा है।